

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र



विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः॥

वर्ष : ६२ अंक : ०२

दयानन्दाब्दः १९५

विक्रम संवत्: माघ कृष्ण २०७६

कलि संवत्: ५१२०

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.

पाँच वर्ष-१२०० रु.

आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i j k dkj h

जनवरी द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. सब कुछ लुटा के भी जो होश में...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४५	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. गृहस्थ आश्रम की सफलता...	प्रो. रामसिंह	१५
०५. जहाँ ज्ञानी बुद्धिमान् होते हैं, वहाँ...	कन्हैयालाल आर्य	२०
०६. एक दैदीप्यमान नक्षत्र का...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	२४
०७. मैक्समूलर के विचारपरिवर्तन में...	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	२७
०८. आर्यजगत् के समाचार		३०
०९. संस्था की ओर से...		३१
१०. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३४

www.paropkarinisabha.com

email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ

www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सब कुछ लुटा के भी जो होश में न आये उसे हिन्दू कहते हैं

अंग्रेजों के शासनकाल में हिन्दुओं (आर्यों) के सर्वतोमुखी पतन को देखकर उन्हें चेताते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' नामक काव्य में लिखा था-

**हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।**

अर्थात्-कभी भारत देश के उत्थान का वह भी समय था जब हमारे यहाँ विद्याओं की उन्नति थी और यह देश 'विश्वगुरु' कहाता था। यह धन-धान्यों से भरपूर था इस कारण 'सोने की चिड़िया' और 'पारसमणि' कहा जाता था। बल और शस्त्रास्त्र शिक्षा से सम्पन्न होने से 'अजेय' था। आज हमारी सभी प्रकार से जो अवनति हुई है, हमें उसके कारणों पर विचार एवं समाधान का उपाय करना चाहिये, जिससे हम अपने पुराने गौरव को पुनः पा सकें और अपने तथा अपने देश की अस्मिता की रक्षा कर सकें।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से लेखकों, नेताओं, समाजसुधारकों ने भी हिन्दू समाज को समय-समय पर चेताने का भरसक प्रयत्न किया है, किन्तु हिन्दू (आर्य) जन अपने राष्ट्र, समाज, धर्म, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, यहाँ तक कि अपने जीवन के भविष्य की रक्षा के प्रति भी सावधान हुए हों, ऐसा कहीं से नहीं लगता। कोई माने या न माने, किन्तु ऐतिहासिक सच्चाई यही है कि आरम्भिक पुरातनकाल में एकमात्र वैदिक (आर्य) धर्म ही था। कालान्तर में एशिया के ईरान, इराक के वैदिकधर्मी जोरोस्ट्रियन (पारद/पारसी) और यूरोपीय यहूदी कहलाये, जो आर्यत्व से किसी-न-किसी रूप में अपना सम्बन्ध स्वीकार करते थे। फिर २०१९ वर्ष पूर्व ईसाई और १४०० वर्ष पूर्व इस्लाम मतों का स्वतन्त्र मतग्रन्थों के साथ उदय हुआ, जिनकी कट्टरता का दुष्प्रभाव परस्पर भी और पूर्व प्रचलित मतों पर भी विनाशक रूप में हुआ। अरब से चलकर मुस्लिम जब ईरान, इराक आदि पर विजय और धर्मान्तरण कर भारत की ओर बढ़े तो सिन्ध नदी के पार के क्षेत्र को भौगोलिक किन्तु निन्दार्थक नाम 'हिन्दू' दिया, जिसको सहिष्णु भारतीयों ने आर्य के स्थान पर गौरवशाली मानकर अपने सिर पर धारण कर लिया है!! इस्लाम से पीड़ित हिन्दुओं ने वहाँ से तब से पलायन करना आरम्भ किया था जो आज भी रुका नहीं है। परिस्थितियाँ ऐसी बनती जा रही हैं कि यह पलायन भविष्य में भी कब और कहाँ रुकेगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। पहले ईरान-इराक से भागे, फिर अफगानिस्तान से भागे, फिर पाकिस्तान-बांग्लादेश से भागे और स्वनिर्मित दुर्भाग्य देखिये कि अब अपने ही देश में भी

कश्मीर, केरल आदि से भागे-भटकते फिर रहे हैं। इनका कोई संरक्षक नहीं, कोई पीड़ा सुनने वाला नहीं। जो सुनने वाला है उसकी ये सुनना नहीं चाहते। इसका साक्षात् प्रमाण गत दिनों 'नागरिकता संशोधन बिल' के मत-विभाजन के समय मिल गया। बहुसंख्यक हिन्दू समाज पर आधारित अधिकांश राजनीतिक दलों ने हिन्दू समाज के हितों के विरुद्ध निर्भय होकर मत दिया जबकि वही हिन्दू समाज उन दलों को अपना मानता है और वोट देकर विजयी बनाता है। अधिकांश दलों के नेता हिन्दुओं के विरोध में बेझिझक होकर खड़े हैं। केवल एक-दो पीढ़ी की कुर्सी और सत्ता के लालच में उन्होंने राष्ट्रीय अस्मिता और नैतिकता की बलि चढ़ा दी है। न सामाजिक स्वहितों की चेतना है, न स्व-अस्तित्व की चिन्ता है, न भविष्य का चिन्तन है, न स्वदेश, स्वसंस्कृति-सभ्यता की रक्षा की परवाह है, न अपने-पराये हितैषी में भेद की समझ है। इन दलों में अपने देश के बहुसंख्यक लोगों के विपरीत जाने का साहस जो पनपा है उसकी जिम्मेदार हमारी कायर-कमजोर स्वार्थी जनता ही है, जो अपने हित-अहित पर प्रतिक्रिया नहीं करती और जिसे अपने ही भावी दुष्परिणामों का आभास नहीं है। क्या आपने कभी अल्पसंख्या में होते हुए भी दूसरे मत वाले नेताओं को अपने मत वालों के अहित में खड़े होते देखा है? हिन्दू समाज कम-से-कम उन्हीं से दृढ़निष्ठा की कुछ प्रेरणा ले ले!!

इतिहास साक्षी है कि आर्य/हिन्दू भारत ने स्वार्थ हेतु कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया, किसी देश पर कब्जा नहीं किया, किसी को गुलाम नहीं बनाया, किसी का बलात् धर्मान्तरण नहीं किया; नरसंहार, बलात्कार, अपहरण जैसे युद्ध अपराध नहीं किये। विदेशों से भी जो आये सबको गले लगाया। ये हिन्दू समाज के आदर्श मूल्य रहे हैं, किन्तु मतान्धों ने कृतज्ञता ज्ञापन के बदले इस मानसिकता से विश्वासघात किया। हमने भी इन देशों को देश-काल-परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित नहीं किया। हुआ यह कि उलटे इन गुणों के कारण हमारे अन्दर अनेक कमजोरियाँ पनप गईं, जो हमारी पराजय और विनाश का कारण बनीं। सभ्य भाषा में कहा जाये तो दुनिया के पीड़क समुदाय भलीभाँति जानते हैं कि हिन्दू समाज शान्तिप्रिय है, क्षमाशील है, अहिंसक है, सहिष्णु है, युद्धप्रिय नहीं सहयोगी है, किन्तु इन्हीं अहिंसावादी गुणों ने उसको कायर, कमजोर, भीरू, पलायनवादी, सांगठनिक भावना से विहीन और स्वार्थी बना दिया है। आत्मकेन्द्रित रहना उसकी जीवनशैली बन गई है। एकजुट होकर अन्यायों

अत्याचारों का मुकाबला करने के बजाय वह हर जगह से भाग खड़ा होता है। इस कायर प्रकृति ने ही उसका अपना सब कुछ लुटवा दिया, देश, धर्म, राज्य, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, यहाँ तक कि विवेक भी। वह इतना असावधान है कि आज भी वह कल्पित अहंकार एवं आत्म-विमुग्धता की स्थिति में जीवन जी रहा है।

यद्यपि अन्य समुदायों के साथ सह-अस्तित्व की भावना के साथ रहना हिन्दू समाज का सामाजिक गुण है, किन्तु यह तभी तक गुण माना जा सकता है जब प्रतिदान के आपसी व्यवहार में भी उसको बराबर का व्यवहार मिले, अन्यथा यह हानिकारक सिद्ध होता है। अपने प्रतिक्रियाविहीन स्वभाव के कारण विश्व में हिन्दू की वर्चस्वहीन छवि निर्मित हो गई है। वह हर उस बात को सहन करता रहता है जो उसको अपमानित करती है और उसको कमजोर सिद्ध करती है। उसके साथ विगत में हो चुका और वर्तमान में होने वाला बर्ताव इस सत्य का प्रमाण है। विडम्बना देखिये कि विदेश से आकर विदेशी मत के अनुयायी जो स्वयं भारत के नागरिक बन राजनीतिक उच्चस्थ पार्टी के नेता तक बने वे इस देश के मूल मत के विदेशों में पीड़ित हिन्दू समाज के लोगों को नागरिकता देने का पुरजोर विरोध करने का साहस कर रहे हैं और हिन्दू समाज उस विरोध को सहन कर रहा है। हिन्दू समाज के अन्दर ही कुछ ऐसे तत्व भी पनप गये हैं जो इसको दीमक की तरह खोखला कर रहे हैं। उन तत्वों के नाम हैं उदारवादी, वामपंथी, सेक्युलर आदि। उनका सोते-जागते एक ही लक्ष्य है.. हिन्दुत्व/आर्यत्व का विरोध करना। एक अन्य विदेशी पैसों पर चलने वाला जयचन्दी वर्ग भी है। उनकी लीला देखिये कि बांग्लादेश और म्यांमार से आये अवैध घुसपैठियों का वे संरक्षण एवं समर्थन कर रहे हैं तथा अपने हिन्दू समाज के पीड़ित वैध लोगों का विरोध!! अवैध विदेशी घुसपैठियों को बसाने के लिए आन्दोलन करते हैं और अपने हिन्दू समाज के लोगों को भारत से भगाने के लिये। इतना तक ही नहीं, यही लोग आतंकवादियों के पक्ष में सदा खड़े दिखते हैं और उनका हौसला बढ़ाने का काम करते हैं। ये लोग 'हिन्दू आतंकी' की मिथ्या अवधारणा इसलिए घड़ते हैं जिससे केवल मुस्लिमों के माथे पर आतंकवाद का कलंक चस्पा न रहे। हिन्दू समाज पर भी उसकी मुहर लग जाये। उससे हिन्दू हताश हो जाये और मुसलमान खुश रहे। शायद, ऐसी कुटिलता तो कुटिलशिरोमणि अंग्रेजों ने भी नहीं की। प्राचीन भारत का गौरवशाली इतिहास, हिन्दुओं के सम्मान्य ऋषिजन, राम, कृष्ण आदि महापुरुष, रामसेतु आदि अद्भुत कार्य इनको कल्पना लगते हैं। उनके इतिहास को विकृत करना इनका पवित्रतम कर्म है। तुष्टीकरण की सारी हदें उस समय धराशायी हो रही लगती हैं जब हिन्दू

समुदाय के ही कुछ उच्च नेता यह कहते मिलते हैं कि भारत की सम्पत्तियों पर पहला अधिकार मुसलमानों का है। कहनेवालों की धृष्टता की पराकाष्ठा है और सहनेवालों की कायरता की। कहने वाले किसी को कुछ भी कहने में भय नहीं है और सुनने वाला हिन्दू है कि सब सुन लेता है।

विश्व में कट्टर मुसलमानों ने अपने कारनामों से अपनी छवि नरसंहारक, आतंकवादी, उत्पाती, अकृतज्ञ, असहनशील, अविश्वसनीय की निर्मित कर ली है। अतः उनके साथ रहते हुए हर समुदाय भय एवं सन्देहग्रस्त बना रहता है, क्योंकि उनको परिणाम में सर्वत्र यही व्यवहार मिला है। भारत के मुसलमान भले ही शोर करते रहते हों कि यहाँ उनके साथ अन्याय, भेदभाव होता है, किन्तु सच्चाई यह है कि उनको जितनी बेहतर सुविधा और आजादी भारत में उपलब्ध है उतनी पाकिस्तान-बांग्लादेश में नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता तो करोड़ों की संख्या में अवैध घुसपैठ करके उनके लोग भारत में नहीं आते। यहाँ मुसलमानों की जन्म-वृद्धि दर बहुत तेजी से बढ़ रही है। सन् १९५१ में यह ९.८ प्रतिशत अर्थात् साढ़े तीन करोड़ से कम थी जो २०१९ में बढ़कर २४ प्रतिशत हो गई, अर्थात् भारत में वैध-अवैध मुसलमानों की जनसंख्या लगभग २५ करोड़ हो गई है। कहा जाता है कि हिन्दू समाज के दम्पती की सन्तान दर प्रति दम्पती डेढ़ है, किन्तु मुसलमान दम्पती की वृद्धि दर आठ है। स्थिति यह है कि अधिकांश डेढ़ दर वाले टैक्स भरते हैं और आठ दर वाले बैठकर खाते हैं, फिर भी उन्हें इसी देश और देशवासियों से वितृष्णा रहती है।

वामपन्थियों का तो सदा हिन्दू हित विरोधी ऐसा आचरण होता है जैसे उन्होंने तो विरोध का कोई मन्त्र ही धारण कर रखा हो। सेक्युलरों का आचरण ऐसा है जैसे उन्होंने सेक्युलरवाद के नशे की गोली खा रखी हो और उसके कारण उनकी वर्तमान और भविष्य के चिन्तन की शक्ति ही कुंठित हो गई हो। विरोधाभास देखिये, वे लोग और मुस्लिम सेक्युलरवादी भारत में सेक्युलरवाद के उछल-उछल कर नारे लगाते हैं, किन्तु किसी मुस्लिम देश के बारे में सेक्युलर न होने की चर्चा या माँग भी नहीं करते। कथित उदारवादी अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता की गलतफहमी में बहके रहते हैं। उनकी दृष्टि में उनका समाज चाहे भाड़ में जाये। सेक्युलर और उदारवाद की विचारधाराओं में बहकने के दुष्परिणाम आज इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस आदि यूरोपीय देशों में प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। सेक्युलरवाद के आकर्षण में पड़कर वे कट्टर इस्लाम के शिकंजे में जकड़े जा चुके हैं।

ऐसे ही दूरदर्शिता-विहीन कारणों से हिन्दू समुदाय को विगत बारह-तेरह सौ साल तक विदेशी हमलावरों के बर्बर

अत्याचार भी सहन करने पड़े हैं किन्तु फिर भी इनमें ऐक्यबुद्धि नहीं आई। अतीत में आपस की फूट ने राजाओं को भी बर्बाद किया, उनके राज्य को भी और राष्ट्र को भी। दूर देशों से सीमित संख्या में सेना लेकर आये हमलावरों ने करोड़ों की जनसंख्या वाले भारत देश को बुरी तरह पराजित किया, इस पर दिल दहला देने वाले अत्याचार किये। मुस्लिम मतान्ध हमलावर एक-एक भारतीय शासक को निगलते गये। जो उनके आक्रमण से बचे थे वे इस गलतफहमी में अलग-थलग बैठे रहे कि उनका कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। आखिर में वे भी एक दिन उनका शिकार बन गये। मौत बनकर आये हमलावर मौत की तरह एक-एक को अपना ग्रास बना रहे थे फिर भी उन अदूरदर्शी, मूर्ख शासकों में एकता की भावना उत्पन्न नहीं हुई। इतने अत्याचार झेलने और लुटने-पिटने के बाद भी हिन्दू समुदाय आज भी एक नहीं है। वह पार्टियों में बँटकर खण्डित और शक्तिहीन बना हुआ है। उसने न तो अतीत के इतिहास से कोई सबक सीखा और न विमत के चुनौतीपूर्ण एकता के उदाहरणों से।

हिन्दू समुदाय के साथ रहने वाले ईसाई और मुस्लिम समुदायों का व्यवहार कभी सह-अस्तित्व का नहीं रहा। ईसाइयों का व्यवहार अत्याचार एवं कुटिलतापूर्ण रहा और मुस्लिमों का बर्बरता, नरसंहार, बलात्कार, अपहरण, धर्मान्तरण, लूटपाट जैसे अत्याचारों से कलंकित। कट्टर मुस्लिमों द्वारा किया जानेवाला नरसंहार न केवल अन्य मत वालों के साथ होता रहा है, अपितु उनके अपनों के साथ भी होता रहा है। उसका सामयिक उदाहरण 'आई एस आई एस' है जिसने गत वर्षों में इराक, सीरिया, यमन आदि मुस्लिम देशों में लाखों मुसलमानों का ही कत्ल किया है। बहावी विचारधारा के सुन्नी मुसलमान शिया मुसलमानों के खून के प्यासे रहते हैं। इस कट्टरता की मूल प्रेरणा में केवल सत्ता, धर्मान्तरण और जेहाद ही नहीं हैं, अपितु कुरान की वो आयतें तथा हदीसों भी हैं जिनमें सभी गैर मुस्लिमों को काफिर घोषित करके उनके कत्ल करने का अधिकार प्रत्येक मुसलमान को दिया गया है। ऐसे मुसलमान को सीधे जन्नत (स्वर्ग) मिलने का लालच दिया गया है, जहाँ एक मुसलमान को सारे भौतिक सुखों के साथ सत्तर हूरें (सुन्दरियाँ) मिलने का वादा किया है। उस कल्पित लालच में बहककर हर मुसलमान और उसका गुट अपनी-अपनी बुद्धि या पसन्द से उस अधिकार का प्रयोग करता है। औरों की बात तो छोड़ दीजिए, इसी कट्टरता में आकर कर्बला के मैदान में मुहम्मद साहब के नवासे इमाम हुसैन का कत्ल भी स्वयं मुसलमानों ने ही किया था, जबकि नवासों की और बाल्यपन में अकबर की रक्षा हिन्दू राजाओं ने की थी। मुसलमानों की कट्टरता कृतज्ञता को भुला देती है।

शायर माथुर लखनवी ने इस घटना के सन्दर्भ में मुसलमानों पर बड़ा मार्मिक व्यंग किया है-

**खुदा का शुक्र है हम हिन्दुओं में कोई
शब्बीर का कातिल नहीं है।**

भारत का सारा मुस्लिम इतिहास उनके द्वारा क्रूरता से बहाये खून से रंगा है। सन् ११०० के महमूद गजनवी के आक्रमण से लेकर १९४७ के जिन्ना द्वारा कराये हिन्दुओं के नरसंहार तक के प्रामाणिक दस्तावेज़ी आंकड़े चौदह से पन्द्रह लाख लोगों के कत्ल के मिलते हैं। जो रिकॉर्ड नहीं हो पाई वे हत्याएँ अलग हैं। उक्त अत्याचारों के बल पर मुसलमानों ने अब तक अपने मत के ५७ देश बना लिये हैं। अब भारत उनके लक्ष्य में है। उन देशों में गैर मुस्लिमों के साथ उत्पीड़न हो रहा है, इस सत्य को संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है।

भावी आशंकाओं का आकलन करते हुए कुछ देशों ने इन पर अपने देश में कठोर अनुशासन करना आरम्भ कर दिया है। मुसलमानों द्वारा शरीयत कानून लागू करने की माँगों के उत्तर में चीन, रूस, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों ने स्पष्ट कह दिया है कि जिसको हमारे देश के कानून स्वीकार्य हों वे यहाँ रहें, अन्यथा देश छोड़कर चले जायें। जहाँ एक पार्टी का शासन है वहाँ कठोर अनुशासन करना आसान है, किन्तु भारत में लोकतन्त्र होने के कारण इस प्रकार के संगठनों पर कठोर नियन्त्रण कर पाना कुछ कठिन है। फिर भी भारतीय समाज में शान्ति-सद्भाव बनाये रखने के लिये शासन को कोई तो निर्णयात्मक कदम उठाना पड़ेगा। सन् १९४७ में विभाजन के आधार पर हिन्दू देश बनाने का सुअवसर विदेशी मानसिकता के हमारे नेताओं ने गँवा दिया। यह इस देश के साथ धोखा और विश्वासघात हुआ है। अब परिस्थितियाँ विपरीत दिशा में बदल चुकी हैं। यद्यपि कुछ हिन्दू संगठन और आर्यसमाज इस दिशा में गिलहरी प्रयास में सक्रिय रहते हैं किन्तु अब तो भारत के समस्त हिन्दू समुदायों का विवेक एवं ऐक्य ही अपने और अपने देश के अस्तित्व को बचाने का दूरदर्शी उपाय है।

वैसे यह गम्भीर चिन्ता और लज्जा का विषय है कि निर्णय का सही अवसर आने पर जिस हिन्दू समाज के लिए अस्तित्व-चिन्ता, स्वदेश रक्षा, राष्ट्रहित और संस्कृति-सभ्यता से बढ़कर प्याज-टमाटर का महत्त्व सर्वोपरि हो जाता हो उसका भविष्य कैसे सुरक्षित रह सकता है? यह विचारणीय है। क्या हिन्दू समुदाय की विचारशक्ति इतनी खोखली हो गई है? ऐसी स्थिति में अस्तित्व-रक्षा के अपने ईमानदार प्रयासों के साथ-साथ भगवान् से भी यह प्रार्थना की जा सकती है-
**भगवान् हिन्दुओं को ऐसी लगन लगा दे,
अपने भविष्य का रक्षक उन्हें बना दे। डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।

आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥

हम इस मन्त्र के माध्यम से हमारे समाज में जो स्त्री वर्ग है, उसका अध्ययन कर रहे हैं। हम तुलना कर रहे हैं कि वेद की शब्दावली और सामान्य जनों की शब्दावली में क्या अन्तर है। क्योंकि यदि हम वेद का उपदेश दें तभी हमारे वातावरण में, हमारी मानसिकता में अन्तर आ सकता है। ऋषि दयानन्द ने इसके लिए प्रारम्भ से ही इतना अधिक प्रयत्न किया कि उन्होंने शिक्षा का अधिकार भी महिलाओं का माना, वेद पढ़ने का अधिकार भी महिलाओं का माना और इतना ही नहीं, जब सत्यार्थप्रकाश में प्रश्नोत्तर चल रहे हैं तो वेद पढ़ने का अधिकार किस-किसको है, तब इसकी चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। जब मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार कह दिया तब स्त्रियाँ उससे अलग कैसे हो सकती हैं। जब पुरुष को वेद पढ़ने का अधिकार है तो महिला को भी वेद पढ़ने का अधिकार है और ब्राह्मण को वेद पढ़ने का अधिकार है तो शूद्र को भी वेद पढ़ने का अधिकार है। **ब्राह्मण और शूद्र परिस्थिति का नाम है, व्यक्ति का नहीं है। एक व्यक्ति ब्राह्मण हो सकता है, वही व्यक्ति शूद्र भी हो सकता है, वही व्यक्ति वैश्य या क्षत्रिय भी हो सकता है।** इसकी चर्चा इस समय हमारा विषय नहीं है, विस्तार से कभी दूसरे अवसर पर करेंगे।

यहाँ पर मुख्य बात है कि जब एक अधिकार किसी भी तरह से पुरुष को प्राप्त है तो महिला को क्यों नहीं प्राप्त है? इसके लिए स्वामी दयानन्द का तर्क बहुत अच्छा है। वे कहते हैं कि जो-जो वस्तु, बात, विचार ईश्वर की ओर से है वह सबका है, सबके लिए समान है। अन्तर कहीं आता है तो पात्रता का आता है, योग्यता का आता है। गधे हैं, घोड़े हैं,

हाथी हैं, ये तो वेद पढ़ नहीं सकते, इसलिए मैं कहूँ कि उनका अधिकार है, अधिकार तो है लेकिन पढ़ने का सामर्थ्य नहीं है, किन्तु मनुष्यमात्र जिसके पास पढ़ने का सामर्थ्य है उसको आप वेद पढ़ने से वंचित नहीं कर सकते। इस वंचित करने के प्रश्न में एक प्रश्न उठाया है कि मध्यकाल के समय कहा है कि स्त्रियाँ यदि वेद पढ़ेंगी तो फिर हम क्या करेंगे? तो स्वामी दयानन्द कहते हैं- तुम क्या करोगे इसकी हमें चिन्ता नहीं है, तुम चाहे कुएँ में पड़ो, लेकिन जिनका अधिकार है उनके अधिकार को तुम नहीं छीन सकते। इसलिए उनको तो वेद पढ़ने का अधिकार है।

किस तरह से अधिकार है, इसके लिए उनका जो तर्क है वह बहुत अच्छा है। वे कहते हैं कि इस संसार में जिसने पैदा किया है, उसकी जो भी सम्पत्ति है वह उसकी सन्तान की होती है। जैसे समाज में एक व्यक्ति है, उसके यदि तीन-चार बच्चे हैं तो उसकी सम्पत्ति सब बच्चों की होती है, कोई उसको छीन नहीं सकता। यदि दुर्भाग्य से कोई बच्चा ऐसा है जिसमें क्षमता नहीं है, योग्यता न हो तो उसका संरक्षण करना- जो समझदार हैं उनका उत्तरदायित्व है। उससे छीनना उनका अधिकार नहीं है। यदि वह किसी कारण से नहीं पढ़ता, नहीं पढ़ पाता तो भी उसकी रक्षा करना और वैसा ही लाभ देना उनका कर्तव्य है।

ऋषि दयानन्द कहते हैं कि एक मनुष्य का कर्तव्य है कि यदि उसे कोई परमेश्वर की वस्तु प्राप्त है तो परमेश्वर के बनाये हुए जितने भी प्राणि हैं, सन्तान हैं उन सबको भी उससे युक्त करे, उससे वंचित न करे। जैसे भोजन है तो भोजन मनुष्य को भी मिलना चाहिए, अन्य प्राणियों को भी मिलना

चाहिए। यदि प्राणियों को, मनुष्यों को भोजन मिलना चाहिए, तो एक मनुष्य क्या सबको भोजन देगा? सबको भोजन तो नहीं देगा और ना ही दे सकता है, लेकिन जो उस पर आश्रित हैं, जो उससे जुड़े हैं, जो उसके पास आते हैं उनका उत्तरदायित्व तो उसके पास ही है। वैसे ही इस संसार के प्राणियों के भोजन में मनुष्य का उतना उत्तरदायित्व है, जितने अंश में वह प्राणियों से जुड़ा हुआ है। प्राणियों का उपयोग करता है तो उनका बचाव करना, पालन करना, उनसे काम लेना यह एक मनुष्य का उत्तरदायित्व है।

ऋषि दयानन्द कहते हैं कि यदि वेद परमेश्वरीय ज्ञान है तो वह ज्ञान जो-जो प्राप्त कर सकते हैं उन सब तक जाना चाहिए, सबको मिलना चाहिए और जिसके पास यह ज्ञान है, उसका यह उत्तरदायित्व है कि वह सबको दे, चाहे वह स्त्री है, पुरुष है, शूद्र है, सेवक है, मजदूर है। मनुष्य का उत्तरदायित्व है कि जैसे वह अपना धन, भोजन उनको देता है उनको वस्त्र देता है, वैसे ही यदि वे ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान की योग्यता उनमें है तो परमेश्वर का ज्ञान भी मनुष्य को दिया जाना चाहिए। इसलिए स्त्रियों को भी उतना ही अधिकार है वेद पढ़ने का, वेद सुनने का, जितना किसी पुरुष को है।

इसमें रोचक तथ्य यह है कि जिन भी लोगों ने यह बात सोची कि स्त्रियाँ वेद न पढ़ें, तो उनके मन में एक दुर्भाव था कि व्यक्ति पढ़ने से, खुद जानने-समझने से समझदार हो जाता है। उसके अन्दर योग्यता की, बुद्धि की परिस्थिति विकसित हो जाती और जो व्यक्ति बुद्धिमान् होता है वह समर्थ होता है, स्वावलम्बी होता है और ऐसी स्थिति में ऐसा व्यक्ति दूसरे के आधीन नहीं चलता, दूसरे के वश में नहीं रह सकता। जो लोग ऐसा समझते थे कि समाज को हम अपने वश में रखें और हमारे पास आई हुई सत्ता कभी भी हमसे अलग न हो, इस सत्ता पर हम और हमारी सन्तान उसी तरह से अधिकार बनाए रखें, जैसे आजकल हम आरक्षण के माध्यम से बनाकर रखना चाहते हैं। यह भी आरक्षण था उस समय का, जिसे ब्राह्मणों ने किया था और पीढ़ी दर पीढ़ी चलाया था। वह भी गलत था, यह भी गलत है।

ज्ञान का, योग्यता का आरक्षण नहीं होता, वह सबकी चीज है। जिसके पास भी है, जिसे भी मिली है, जिसको भी मिल सकती है उन सबको मिलनी चाहिये। इसी दृष्टि से उन

लोगों ने 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' का नारा दिया अर्थात् स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, वेद सुनने का अधिकार नहीं, वेद बोलने का अधिकार नहीं है। यह नितान्त गलत है, मिथ्या है। उनकी इच्छा ऐसी क्यों है? क्योंकि ज्ञान से कोई भी व्यक्ति बुद्धिमान् बनता है, समझदार व विवेकशील बनता है और विवेकशील व्यक्ति किसी के वश में नहीं रहता, किसी के कहने में नहीं चलता। उसके पास अपनी बुद्धि, अपना सोच, अपनी लाभ-हानि का विचार होता है और जो अपनी लाभ-हानि का विचार कर सकता है वह दूसरे के हिसाब से क्यों चलेगा? तो इसलिए उन लोगों ने सारे समाज को ही अनपढ़ रखने का यत्न किया। स्त्रियों के रूप में तो पूरा आधा समाज ही अनपढ़ बन जाता है। फिर शूद्रों के रूप में और एक हिस्सा अनपढ़ बन जाता है। तो इस तरह ७५ प्रतिशत जनता को अनपढ़ रखकर हम क्या प्राप्त कर सकते हैं? किन्तु यह क्रम चला और उसका परिणाम यह हुआ कि हम दास बने, हमारी अज्ञानता से हम दरिद्र बने, हम पराधीन हुए, क्योंकि हम कभी-कभी छोटे लाभ के लिए सोचते हैं तो उससे होने वाली बड़ी हानि दृष्टि में नहीं रहती। हमारे उन थोड़े से लोगों ने इसका उपयोग करना चाहा और इस देश को हजारों साल की पराधीनता की परिस्थिति में डाल दिया। जितना-जितना अज्ञान बढ़ेगा, अविवेक बढ़ेगा, मूर्खता बढ़ेगी, उतनी-उतनी पराधीनता, दुःख, अधर्म बढ़ेगा और वही परिस्थिति हुई।

जिन लोगों ने यह माना कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है- हम समझते हैं कि इन लोगों ने बाहर अपराध किया है, बाहर के लोगों को सताया है, दबाया है। बाहर के, दूसरे लोगों को दबाने की बात तो छोड़ दीजिये इन्होंने तो अपने घर के लोगों को ही दबाया है। एक स्त्री जो माँ के रूप में है, बहन के रूप में है, बेटा के रूप में है, पत्नी के रूप में है उसको भी उन्होंने अधिकार से वंचित रखा है और इस प्रताड़ना से पूरा समाज त्रस्त रहा है, दुःखी रहा है। ऋषि दयानन्द ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इसका प्रमाण सहित निराकरण किया है और उन्होंने स्वयं वेद के ही प्रमाण देकर-
यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्त्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समुध्यतामुप मादो

नमत्तु। इस मन्त्र का अर्थ करते हुए वे लिखते हैं- जैसे परमेश्वर की दी हुई हवा है, पानी है, अन्न है, जल है, भूमि है, यह सबकी है वैसे ही परमेश्वर का दिया हुआ ज्ञान भी सबका है और वह ब्राह्मण का है, क्षत्रिय का है, वैश्य का है, शूद्र का है।

शूद्र तो एक परिस्थिति का नाम है, जब वह पढ़ नहीं सका, पढ़ने का सामर्थ्य नहीं, पढ़ने का संस्कार और बुद्धि नहीं है तो जो वह कर सकता है, केवल वह परिस्थिति शूद्र की है, अर्थात् जो शारीरिक श्रम करता है। ऐसा नहीं है कि उसके अन्दर समझ की कमी है, इतना ही है कि वह बहुत विद्या का सामर्थ्य नहीं रखता है। वह सामान्य ज्ञान तो रखता है, उसके अन्दर भी विवेक है लेकिन विशेषज्ञता नहीं है इसीलिए वह एक परिस्थिति है। वह उसके साथ हो सकती है, उसके बेटे के साथ नहीं हो सकती। उसकी सन्तान उससे योग्य हो सकती है तो इसलिए यह कहना कि शूद्र को अधिकार नहीं है, यह गलत है, शूद्र को अधिकार नहीं है तो वह स्वाभाविक रूप से ही नहीं है। यदि वह कर सकता तो उसका अधिकार अपने आप था, नहीं कर सकता इसलिए उसका अधिकार नहीं बना, नहीं बना तो उसका व्यक्तिगत नहीं बना। उसके परिवार के सदस्यों का भी नहीं बना, यह तो आप नहीं कह सकते हो। वे यदि योग्य हैं, उनके अन्दर सामर्थ्य है तो उनको वह अधिकार है।

बहुत सारे लोग प्रश्न करते हैं कि उनको शूद्र इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे शूद्र के घर में पैदा होते हैं। लेकिन उससे क्या? वर्ण का विवेचन होता कब है? वर्ण दिया कब जाता है? आदमी पहली कक्षा से पढ़ना प्रारम्भ करता है लेकिन वह स्नातक लगभग १४ साल में बनता है। स्नातक बनने का प्रयास तो उसका पहले दिन से शुरु हुआ, लेकिन पहले दिन न तो स्नातक बनाया जाता और न स्नातक बनने के बाद उसे पहले दिन वाली परिस्थिति में रखा जाता। शूद्र है क्योंकि शूद्र की परिस्थिति में है, जिस दिन वह शूद्र की परिस्थितियों को उलट देगा, पलट देगा, छोड़ देगा उस दिन वह शूद्र नहीं रहेगा। वह ब्राह्मण बनेगा, क्षत्रिय बनेगा, जो भी बनेगा बन जायेगा। उस दिन उसको वर्ण मिलता है, वर्ण गुरु देता है, जैसे उपाधि दी जाती है, जैसे डिग्री दी जाती है, जैसे कोई परीक्षा पास करने पर योग्यता बताई जाती है, वैसे ही यह काम भी

आचार्य के द्वारा किया जाता है, गुरु के द्वारा किया जाता है, राजा के द्वारा दिया जा सकता है और वर्ण दिये जाने के बाद उसे समाज में विशेष योग्यता, दर्जा प्राप्त होता है। तो **यथेमामं वाचं कल्याणीम्** यह कैसी वाणी है? कल्याणी वाणी है। **आवदानि जनेभ्यः** परमेश्वर कहता है- मैं यह सब संसार के लोगों के लिये बता रहा हूँ, संसार के लोगों के लिये दे रहा हूँ, समस्त संसार के लोगों के लिये यह उपदेश है। **ब्रह्मराजन्याभ्याम्** वे चाहे ब्राह्मण हों, चाहे राजन्य हों। **शूद्राय, चार्याय, स्वाय चारणाय च** वे अपने सेवक हों, मजदूर हों और चाहे वे शूद्र हों इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। **अयं मे कामः समृध्यताम्** जो व्यक्ति मेरी इस कामना को बढ़ाता है, मैं उससे प्रसन्न होता हूँ अर्थात् जैसे माता-पिता, उनकी सन्तान को यदि कोई बढ़ाता है तो उसे देखकर वे प्रसन्न होते हैं और उस व्यक्ति की प्रशंसा भी करते हैं, वैसे ही परमेश्वर कहता है कि जब आप मेरे ज्ञान को मेरी सन्तान को देंगे तो मैं भी आपसे बहुत प्रसन्न होऊँगा। **अयं मे कामः समृध्यताम्-** यह जो मेरी कामना है, मेरी इच्छा है कि सभी को ज्ञान मिले, योग्यता मिले, सबको सामर्थ्य मिले, सबको सुख मिले, यह परिस्थिति सबके साथ हो, यह बात इस मन्त्र में कही है।

ऋषि दयानन्द जो बात कहते हैं वह यह है कि परमेश्वर ने जिन वस्तुओं का निर्माण किया है, जो वस्तुयें उसने संसार में उत्पन्न की हैं और संसार के मनुष्यों के लिये दी हैं, वे किसी एक मनुष्य के लिए नहीं दीं, वे कुछ या थोड़े से मनुष्यों के लिए नहीं दीं, वे मनुष्य मात्र के लिये दी हैं। भोजन है, जल है, वायु है यह प्राणिमात्र के लिए दिया हुआ है। **जनेभ्यः** अर्थात् मनुष्य मात्र के लिये। **आवदानि** कह रहा है, कहा है, कहता रहूँगा। वह चाहे आर्य हो चाहे अनार्य हो, शूद्र हो चाहे अति शूद्र हो। इसलिए यह कहना कि हमारे समाज में महिलाओं के प्रति उपेक्षा का भाव है, निन्दा का भाव है या आलोचना का भाव है, यह कहना किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं हो सकता। यह बात मन्त्र में जो शब्द कहे गए हैं-**अनश्रवः अनमीवाः सुरत्नाः** अर्थात् वे मानसिक दुःख से दूर हों, वे शारीरिक कष्टों, व्याधियों से भी, न्यूनताओं से भी, अभावों से भी दूर हों और वे सबकी अनुकूलता के कारण, सहयोग के कारण, सद्विच्छा के कारण उन्नति को, ऐश्वर्य को प्राप्त हों। यह इतनी सुन्दर जो शब्दावली है, यह उस समय के विचार को, वेद के विचार को हमारे सामने उपस्थित करती है।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

ईश्वर की सर्वव्यापकता का बोध हो गया- पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के साहित्य का अनुरागी तो सन् १९४९ में श्रद्धेय पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री की कृपा से बन गया। बी.ए. करने तक उनके सैंकड़ों लेख व पुस्तकें पढ़कर पचा चुका था, परन्तु सन् १९५२ के अन्त में जब वे बहुत रुग्ण हो गये तब श्री लाला सन्तलाल जी विद्यार्थी ने दिल्ली से अपने पत्र के साथ मेरा भी भक्तिभाव से लिखा पत्र उन्हें भेज दिया। उसमें दिल्ली आकर बड़े डॉक्टरों से चिकित्सा करवाने की विनती की गई। मैं भी सेवा में समय दूँगा। यह भी लिखा था। इसका उत्तर लालाजी के पत्र में ही आपने देते हुये यह वाक्य लिखा था- "ईश्वर इलाहाबाद से भी उतना ही निकट है जितना दिल्ली से।"

यह पत्र साप्ताहिक रिफॉर्मर में तभी छप गया। मेरे हृदय पर यह वाक्य अंकित हो गया। यह उनको लिखे गये मेरे प्रथम पत्र का उत्तर था। मेरे हृदय पर ईश्वर की सर्वव्यापकता की आपने छाप लगा दी। 'सर्वव्यापक' शब्द में ही ईश्वर की सत्ता, महत्ता, उसका स्वरूप तथा सब गुण आ जाते हैं। ऐसा उपाध्याय जी के साहित्य से मैंने गहराई से जान लिया। उस समय से उपाध्याय जी के हृदय में मेरा स्थायी स्थान बन गया।

यदि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं तो वह स्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, रक्षक, पोषक, कर्मफलदाता व न्यायकारी भी नहीं हो सकता। वह प्रभु निराकार है, यह भी सर्वव्यापक होने से है। सर्वव्यापक प्रभु को न टाँगें चाहिये, न हाथ, न पैर, न कान, न आँखें चाहियें। आँखें व कान दूर की वस्तु को देखने, अपने से दूरवाले की बात सुनने तथा दूरवाले के पास आने-जाने के लिये पग चाहिये। वह प्रभु कहाँ जावेगा? कहाँ आयेगा? किसे देखेगा? जब शरीर ही नहीं तो उसको भोग लगाने की बात करना सर्वथा अज्ञान है। उसकी कोई आवश्यकता (इच्छा) नहीं तभी तो परमात्मा पूर्ण है।

आओ! वैदिक आस्तिकवाद का संसार में डंका बजा

दें। जड़-पूजा, व्यक्ति-पूजा के पाप से संसार को मुक्त करें।

परमात्मा का अपमान?- भाजपा के अधिकांश प्रवक्ता संघ के पूर्व प्रचारक हैं। कई प्रवक्ता योग्य व परिश्रमी हैं। कई भाजपा का राजनैतिक पक्ष रखते-रखते धर्म व दर्शन के मर्मज्ञ बनकर बहुत विचित्र व हास्यास्पद बातें कह जाते हैं जो उनकी पार्टी व उन वक्ताओं की शोभा बढ़ाती नहीं घटाती हैं। यथा एक ऐसे सज्जन प्रायः यह कहा करते हैं- "मैं ऐसा मानता हूँ" यह रट लगाते रहते हैं। वह एक दिन स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति को साम्यवादी छात्रों द्वारा क्षति पहुँचाने को परमात्मा का अपमान बता रहे थे। मूर्ति किसी की भी हो उसका अंग-भंग करना शरारत है, परन्तु परमात्मा के मान-अपमान का तो कुछ अर्थ ही नहीं। संसार में करोड़ों लोग नास्तिक हैं। जैन, देवसमाजी सब नास्तिक ही तो हैं। नास्तिक तो ईश्वर को कोसते ही हैं कई आस्तिक भी उसकी निन्दा निडरतापूर्वक करते रहते हैं। यथा एक मुसलमान कवि की एक लम्बी कविता की पंक्ति है-

"सच्च तो है कि ख़ुशामद से ख़ुदा राज़ी है" इससे बड़ी ईश्वर की निन्दा व अपमान क्या हो सकता है? परन्तु इससे ईश्वर को ऐसे लोग क्या क्षति पहुँचा सके? साधु, सन्त, महात्मा, यति योगी अपमान व मान से बहुत ऊपर होते हैं। ऋषि दयानन्द जी भर्तृहरि का कथन दोहराते रहते थे, "निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि..."। गुरु नानक जी श्रेष्ठजनों को उजड़ जाने का और दुष्टों को बसने का मार्मिक आशीर्वाद देते हैं।

भाजपा के माननीय प्रवक्ता ने तो विवेकानन्द जी महाराज की मूर्ति की क्षति को परमात्मा का अपमान बताकर क्या स्वयं परमात्मा का अपमान नहीं किया? क्या सर्वव्यापक प्रभु की मूर्ति परमात्मा है? एक भाजपा प्रवक्ता ने एक बार कहा, "राम तो रोम रोम में है" दशरथ को तो यह बोध न हो पाया कि राम वन में नहीं उनके रोम-रोम में है। फिर श्री राम सन्ध्या किसकी करते थे? माता सीता की खोज के लिये हनुमान जी को क्यों भेजा?

उन्हें पता ही न चला।

शिवजी की तीसरी आँख- शुद्धि सभा के पत्र में एक सज्जन ने 'जीव को परमात्मा का अंश बताया।' ऐसा व्यक्ति वैदिकधर्मी आर्यसमाजी तो हो नहीं सकता। उस पत्रिका के सम्पादक जी कौन हैं? क्या मानते हैं? यह दिल्ली वाले जानें। अब उदयपुर से छपने वाले श्री अशोक जी की संस्था के पत्र में शिवजी की तीसरी आँख को विषय बनाकर अन्धविश्वास की पोंगा पन्थ की गंगा बहा दी है। क्या यही सत्यार्थप्रकाश का प्रचार है? तो लीजिये अगले अङ्कों में मैल से गणेश जी की भी उत्पत्ति हो जानी चाहिये। गणेश जी की हत्या करके उन पर हाथी के सिर की वैलिङ्ग भी करवा दीजिये। एक-एक करके सब पौराणिक कथाओं की नई-नई व्याख्यायें करके हिन्दुत्व की रक्षा कीजिये। इसी दुष्प्रवृत्ति और वेदघात का फल है कि ऋषि के बलिदान पर्व पर किसी सत्ताधारी तथा विरोधी नेता ने ऋषि जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि के दो शब्द न कहे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का शौर्य शताब्दी वर्ष निकल गया। किस नेता ने संगीनों की नोक पर सीना अड़ाने का स्मरण किया। हमने इसी उपलक्ष्य में आधी दर्जन से ऊपर ग्रन्थ आर्यजगत् को भेंट कर दिये। हरियाणा में श्री मास्टर रामपाल जी की अध्यक्षता में हमारे कर्मवीरों ने इस अवसर पर एक ऐतिहासिक कार्यक्रम आयोजित करके 'समरसता महोत्सव' मनाकर देश को एक नई दिशा दी। हमारे प्यारे उदीयमान पुरुषार्थी नेता श्री अभय आर्य जी ने एक विशाल सभा में चालीस दलित धर्मप्रेमी समाजसेवी मान्य पुरुषों को पगड़ी पहनाकर देश का सिर ऊँचा कर दिया। अय श्रद्धानन्द के दुलारो प्यारो! जागो देशभर में समरसता की लहर को फैला दो। यह समाचार सुनकर अभिमान से मेरी छाती फूल गई। विस्तार से अगले अंक में देखें।

हम अपनी सीमाओं को समझें- तड़प-झड़प के प्रेमी पाठक रात्रि नौ दस बजे तक भी चलभाष पर आर्य सिद्धान्तों, मत पन्थों के आक्षेपों, दुर्लभ साहित्य तथा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में इस सेवक से चर्चा करके जानकारी माँगते रहते हैं। अनेक बार ऐसे धर्मबन्धुओं को विनती किया करता हूँ कि इस विषय को गहराई से जानने के लिये आप डॉ. सुरेन्द्र जी, डॉ. वेदपाल

जी, मान्या सूर्या देवी जी, श्रीमान् डॉ. ज्वलन्त जी से धर्म-चर्चा करें। हमें अपने प्रत्येक सिद्धान्त के बारे कुछ-कुछ ज्ञान होना चाहिये, परन्तु कुछ विषयों का गम्भीर तथा व्यापक ज्ञान होना चाहिये। कॉलेज में पढ़ते समय महाशय चिरञ्जीलाल जी प्रेम ने इस लेखक को यह घुट्टी पिलाकर रणक्षेत्र में उतरने की प्रेरणा दी।

अब दुर्भाग्य से एक के पश्चात् दूसरा सर्वज्ञ आर्यसमाज में प्रकट हो रहा है। पं. लेखराम के विशेषज्ञ, पं. लक्ष्मण जी, पूज्य उपाध्याय जी, स्वामी वेदानन्द जी, इस्लाम, ईसाई मत, सिख इतिहास, मुंशी प्रेमचन्द्र जी, लाला लाजपतराय, माता भगवती किसी पर भी इनसे लिखवा लो। यह मनु महाराज से लेकर मौलवी सनाउल्ला तक सबके बारे सब कुछ जानते हैं। इससे भारी अनर्थ हो रहा है।

इन सर्वज्ञ महानुभावों को इतना भी ज्ञान नहीं कि पं. लेखराम जी के पश्चात् और देवेन्द्र बाबू से बहुत पहले श्रद्धेय पं. लक्ष्मण जी लिखित सबसे बड़ा और नई सामग्री से युक्त ऋषि-जीवन छप चुका था। यह उसको नहीं पढ़ सकते थे, परन्तु उनके ग्रन्थ को देखा-सुना भी क्या नहीं था? इनकी तोतारटन यही रहती है यह घटना किसी ऋषि-जीवन में नहीं, इसे देवेन्द्रबाबू ने नहीं लिखा। ऐसे मैक्समूलरों को हमने कभी पं. शान्तिप्रकाश जी, ठाकुर अमरसिंह जी और पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के चरणों में घण्टों बैठकर कुछ पूछते-सीखते नहीं देखा था। बस दर्शन मात्र के लिये भेंट तो अपवाद रूप में हो ही जाती थी।

हमने पं. भगवदत्त जी की जीवनी में एक विशेष बात लिखी है। श्रद्धेय पं. भगवदत्त जी के पास जब कभी उनके तीन भक्त उनके घर दर्शनार्थ जाया करते थे तो जाना इनके बस में होता था लेकिन वहाँ से आ तभी आ सकते थे जब पण्डित जी अनुमति दें। ये तीन व्यक्ति थे- श्री रमेश जी मल्होत्रा, श्री विजयकुमार आर्य तथा राजेन्द्र 'जिज्ञासु'। कभी-कभी उनके आदेश से एक दिन और रुकना पड़ा तो कॉलेज में तार देना पड़ता था।

हमने सत्तर वर्ष उपाध्याय जी के साहित्य पर खपाकर कुछ पाया तब उनके साहित्य व जीवन-चरित्र पर कुछ लिखने व सम्पादन का अधिकार प्राप्त हुआ। स्वयं

साहित्यपिता ने अपनी लेखनी व वाणी से हमें यह गौरव प्रदान किया। इसका प्रमाण उनके प्रकाशित पत्र तथा 'इस्लाम के दीपक' ग्रन्थरत्न पर उनके द्वारा प्रकाशित हमारी सम्मति है। विश्वप्रसिद्ध विचारक हमारे साहित्यपिता ने ऐसा सम्मान जीवनभर केवल ७-८ व्यक्तियों को ही दिया। अब तो हर कोई उपाध्ययरूपी ज्ञानसागर का मर्मज्ञ समीक्षक बना बैठा है। ऋषि-जीवन में यह कहाँ लिखा है? ऐसे-ऐसे प्रश्न ये सर्वज्ञ उठकार हमें नीचा दिखाते हैं। ऋषि जी की निधन के समय आँखें बन्द न की गईं। लाला जीवनदास जी ने बाद में यत्न तो किया, परन्तु...इसका प्रमाण हमीं खोज कर लाये। लाला जीवनदास ने ऋषि के शव को कन्धा दिया और वह थक गये। यह आपके सर्वज्ञों को पता न चला। कारण इनकी पहुँच उन स्रोतों तक थी ही नहीं। मैक्समूलर की माला फेरते-फेरते सहारनपुर में आलकाट और ऋषि की भेंट ही नहीं संवाद तक करवा दिया जबकि ऋषि उस दिन वहाँ थे ही नहीं। ऋषि के सामने जोधपुर में आर्यसमाज स्थापित करवाने की गप्प सर्वज्ञों ने ही गढ़ी। हमने सप्रमाण इस गप्प को झुठला दिया।

सात खण्डों के इतिहास-लेखन की पहली बैठक में इस सेवक को भी बुलाया गया था। कई नेता भी बुलाये गये। तब एक प्रश्न किसी ने उठा दिया कि "आर्यसमाज में कबसे...चल पड़ा?" तब ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध आचार्य प्रियव्रत जी ने कहा, "इसका उत्तर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दिया करते थे, परन्तु मैं नाम भूल गया, जिज्ञासु जी यह जानकारी दे सकते हैं।"

सातों खण्डों में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को कहीं इतिहासकार के रूप में उद्धृत किसी ने किया क्या? इस विनीत के लेखों व ग्रन्थों से सामग्री तो उठाई गई, परन्तु इस लेखक को भी एक प्रामाणिक इतिहासज्ञ के रूप में किसी ने उद्धृत नहीं किया। हम इनकी प्रवृत्ति को तभी ताड़कर पीछे हट गये। उस इतिहासमण्डल में डिग्रीधारी तो थे, मिशनरी इतिहासज्ञ पं. चमूपति जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी व मेहता जैमिनि सरीखा कोई नहीं था। भगवान् सर्वज्ञों से इस समाज की रक्षा करे।

तीन ग्रन्थों का अनुवाद होगा- यह आनन्ददायक

समाचार पढ़कर आर्यजन अपने भीतर एक नवीन ऊर्जा का संचार अनुभव करेंगे। एक साहित्य अनुरागी आर्य भाई ने विदेश से यह अनुमति माँगी है कि लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द, जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द का एक भारतीय भाषा में वे अनुवाद करके छपवाना चाहते हैं। हमने उन्हें सुझाव दिया कि ऋषि के पश्चात् सबसे बड़े पहले हुतात्मा पूज्य पं. लेखराम जी को मत भूलें। रक्तसाक्षी पं. लेखराम ग्रन्थ का अनुवाद भी छपवा दें। ये तीनों ग्रन्थ आर्यसमाज के तीन बलिदानी निर्माताओं पर सबसे बड़े तथा सर्वाधिक खोजपूर्ण हैं। अभी पंजाब के मुख्य अभियन्ता रह चुके श्री तुलसी जी ने कहा जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द में एक-एक पृष्ठ पर कई-कई ग्रन्थों दस्तावेजों के प्रमाण पढ़कर हम दंग रह गये। यह कार्य दूरदर्शितापूर्ण तथा ऐतिहासिक होगा। व्यक्तिगत रूप में कुछ व्यक्ति विदेशों में बैठे भी ठोस सेवा कर रहे हैं। बातें बनाने वाले तो समाज पर एक बोझा हैं।

सि पर सहे कुल्हाड़े, गुरुदेव थे हमारे- पूजनीय बालब्रह्मचारी श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जन्मदिवस पर लिखते-लिखते सेवक का जी नहीं भरता। उनका जीवन अत्यन्त घटनापूर्ण तथा शिक्षाप्रद है। आर्यसमाजी लेखक तथा वक्ता अत्यन्त स्वाध्यायशील होते थे। अब तो किसी भी महापुरुष का जन्मदिवस तथा बलिदान-पर्व हो उन पर लिखने वाले लेखक हर बार एक सी वही पाँच-सात घटनायें उगल देते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज पर अपने विशालकाय ग्रन्थों में इन पंक्तियों के लेखक ने सप्रमाण अनेक विषय लेकर उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अत्यन्त प्रेरक व विलक्षण घटनायें दी हैं जो किसी नबी, पैगम्बर तथा कथित अवतार के बड़े से बड़े चमत्कार से भी बड़ी कही जा सकती हैं। उन्हें हमारे रट्टू तोते छूते तक नहीं और यदि किसी घटना या प्रेरक प्रसंग को दिया भी जाता है तो अपनी जानकारी का स्रोत देने में अपनी अप्रतिष्ठा मानते हैं।

स्वामी जी महाराज दिन में केवल एक ही बार भोजन करते थे और १२ बजने के पाँच मिनट बाद तक भोजन नहीं आता था तो फिर अगले दिन १२ बजे ही किया करते

थे। कई बार कुछ अन्य कारणों से भी एक-एक, दो-दो, तीन-तीन दिन और कुछ घटनायें चार-चार दिन तक भूखे रहने की भी मिलीं। हमने ऐसी कई घटना उनके जीवन-चरित्र में दीं हैं और उनसे कहीं अधिक ग्रन्थ के आकार-विस्तार के भय से छोड़ दीं गईं। कभी भी कोई आर्यसमाजी इस तपस्या का मूल्याङ्कन करनेवाला अब तक देखा नहीं गया। कोई महत्त्व खोलकर बता सकता है। हम यहाँ केवल एक न्यारी-प्यारी घटना देते हैं।

दीनानगर में भूखे रहे- स्व. लाला देवदत्त जी प्रधान आर्यसमाज दीनानगर ने बताया कि हमने अपने उत्सव पर मुसलमानों से शास्त्रार्थ के लिये पूज्य पं. रामचन्द्र देहलवी को आमन्त्रित किया। उधर पंजाब सभा के अधिष्ठाता वेद-प्रचार विभाग के रूप में स्वामी जी महाराज से महाशय चिरञ्जीलाल जी 'प्रेम' की भी स्वीकृति ले ली। स्वामी जी महाराज भी उस उत्सव पर पधारे। उनकी दृष्टि में यह अनुशासनहीनता थी। प्रचार-कार्य की हानि थी। जब देहलवी जी को बुला लिया तो फिर श्री प्रेम जी की क्या आवश्यकता थी? वह कहीं अन्यत्र जाते तो धर्मलाभ होता।

इस कारण पूज्य यतिराट तीनों दिन उत्सव पर उपदेश प्रवचन और व्याख्यान तो देते रहे, परन्तु उपवास रखा। किसी को दोष नहीं दिया। रोष का प्रश्न ही नहीं था। अगले वर्ष आने के लिये विनती की गई तो फिर दीनानगर पधारे। मानो कि गत वर्ष कोई ऐसी घटना घटी ही नहीं थी। उनके रोम-रोम में ऋषि-मिशन के प्रचार को फैलाने की ज्वाला धधकती थी। लेखक स्वयं को धन्य-धन्य मानता है जो ऐसी अद्वितीय तपस्वी के चरण में बैठकर बहुत कुछ सीखा।

हमारे प्यारे स्वामी वहाँ से कैसे आये?- आर्यसमाज के इतिहास की यह न्यारी-प्यारी घटना बार-बार सुनानी व लिखनी चाहिये। पश्चिमी पंजाब में मखदूमपुर नाम के एक दूरस्थ ग्राम में महाराज को वेदामृत का पान करवाने के लिये प्रार्थना की गई। ग्रीष्म ऋतु में दोपहर की गाड़ी से उन्हें लाहौर लौटना था। स्टेशन उस ग्राम से दो-तीन मील की दूरी पर था। समाज के प्रधान भूपति धनी-मानी आर्यपुरुष श्री कालूराम ने आग्रहपूर्वक उन्हें कहा कि मैं आपको गाड़ी पर चढ़ाने साथ चलूँगा। कड़कती धूप में

दोनों समाज-कल्याण की बातें करते-करते जा रहे थे कि प्रधान जी को ध्यान आया कि उनकी जेब में तो महाराज का टिकट लेने के भी पैसे नहीं। ट्रेन के आने में अभी बहुत समय था। **स्वामी जी ने कहा, "पैसे तो मेरी जेब में भी नहीं हैं।"**

प्रधान जी ने कहा, "मैं घर जाकर कुछ राशि ले आता हूँ। आप यहाँ इस पेड़ के नीचे रुकें।" घर गये तो ग्राम के विवाद को सुलझाने में ऐसे उलझे कि स्वामीजी को वहाँ खड़ा करके आया हूँ-यह सब भूल गये। रात्रि छत पर सो रहे थे। ठण्डी वायु में गहरी नींद में स्वामीजी की याद आई तो चौंक कर उठ खड़े हुये। अब क्या स्वामी जी वहाँ पेड़ के नीचे होंगे? प्रातः ग्रामवासियों से पूछा, हमारे पूज्य स्वामी जी किधर गये? कैसे गये? कभी पं. शान्तिप्रकाश आदि शिष्यों ने पूछा, "वहाँ से कैसे लाहौर पहुँचे?" आप बात ही टाल जाते। देह-त्याग तक भी किसी को नहीं बताया कि तब कैसे वहाँ से निकले? लाहौर कैसे पहुँचे? आज तो करोड़पति अरबपति साधु बेजोड़ व्यापारी हैं, परन्तु धर्मरक्षा व धर्मप्रचार के लिये जीने-मरने को सदा तत्पर पूजनीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द कहीं दिखाई नहीं देते।

लोहारु का रक्तिम काण्ड- पुलिस ने मक्की के भुट्टों सदृश लोहारु के क्रूर नवाब के राज्य में गुण्डे शस्त्रधारियों को साथ लेकर आर्यों की धुनाई, पिटाई और कुटाई आरम्भ की तो उस घड़ी भक्त फूलसिंह, स्वामी नित्यानन्द जी पर आक्रमणकारियों की सारी शक्ति केन्द्रित थी और लो! हमारे पूज्य स्वामी जी के सिर पर कुल्हाड़े से वार कर दिया गया। लहुलुहान मुनि पैदल चलकर स्टेशन पर पहुँच गये। देहली की ट्रेन पकड़ी

सिर पर सहे कुल्हाड़े स्वामी ने थे हमारे।

वे बाल ब्रह्मचारी गुरुदेव थे हमारे।।

भीगे नयनों से उन्हें शत-शत वन्दन-अभिनन्दन।

यह सुनी-सुनाई भ्रामक कहानी है- श्री स्वामी सदानन्द जी दयानन्द मठ दीनानगर ने पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज पर हरियाणा सभा के साप्ताहिक में एक लेख दिया है। एक गुणी पाठक ने मेरा ध्यान उस ओर खींचा है। न जाने किसकी प्रेरणा से किसी अनाड़ी की पुस्तक पढ़कर यह लेख दिया है। स्वामी सदानन्द हैं तो

अनुभवी, परन्तु किसी अनाड़ी इतिहासज्ञ को अपनी जानकारी का स्रोत बताकर इसमें जो अनर्थकारी भ्रामक बात लिख दी है उससे मेरा ध्यान खींचनेवाले बन्धु को तो धक्का लगा ही मुझे भी भारी दुःख हुआ। पत्र के सम्पादक मण्डल को हम कुछ नहीं कह सकते। मठ द्वारा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज पर प्रकाशित साहित्य की उपेक्षा तो हमारी समझ में आ गई।

१. लेख के तीसरे पैरे में आप लिखते हैं कि महाशय राजपाल जी पर पहले प्राणघातक आक्रमण के समय “स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दोनों भी उपस्थित थे।”

२. आप यह भी लिखते हैं तब वहाँ गली में ये दोनों उपस्थित थे।

३. फिर लिखा है कि जब हत्यारा छुरा लिये भाग रहा था तब स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी उस घातक पर लपके।

४. तब चाकू हत्यारे के हाथ से छूटकर धरती पर गिरा।

ये चारों कथन विशुद्ध गप्पें हैं। मनगढ़न्त कहानियों पर श्री सदानन्द जी ने कैसे विश्वास कर लिया? हत्यारे के पास छुरा ही था सदानन्द जी चाकू भी बता रहे हैं। न तो ऐसी बातें किसी आर्य विद्वान् ने कभी लिखीं हैं। न पाकिस्तान से छपी अन्तिम हत्यारे की जीवनी में। पहले हत्यारे की घटना में दी हैं। न स्वामी श्री सत्यानन्द जी पहले आक्रमण के समय वहाँ थे और न पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तब गली में थे। न पाकिस्तानी दैनिक कोहिस्तान के लेख में ऐसा कोई संकेत है। न ही छुरा हत्यारे के हाथ से गिरा। और भी कई चूक लेख में हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के चित्र को यहाँ कैसे दिया? इन भूलों के लिये आर्यजगत् से मैं क्षमा माँगता हूँ। सत्य क्या है? यह हम अगले अंक में देंगे। सुनी-सुनाई बातों का स्रोत बनाना भारी भूल है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का लेख पढ़िये वही सबसे बड़ा प्रमाण है।

विविध विचार- मजलसे इत्तहादुलमुस्लमीन के नेता मौलाना श्री औवेसी आजकल गाँधी जी क नाम की बहुत दुहाई दे रहे हैं। इन्हीं की पार्टी जिन्नाह को कायदेआज़म मानकर हैदराबाद के भारत में विलय पर रक्तरौदन करती

रही। पढ़िये इनकी पार्टी की पुस्तक “जवाले हैदराबाद!” आज यह देश-प्रेम में घुल रहे हैं। किसी भी सांसद ने कभी इनकी देशघाती करतूतों की पोल नहीं खोली।

एक सज्जन ने चलभाष पर सूचना दी कि काँग्रेस के सांसद बाजवा ने कादियानी मिर्जाइयों को जो भारत में शरण लेना चाहें उन्हें भारत में बसने की अनुमति देने की वकालत की है। संसद में किसी ने उसका प्रतिवाद नहीं किया। इस मत का नबी अंग्रेजों का पक्का गुलाम, मतान्ध तथा देश के स्वराज्य-संग्राम का द्वेषी था। मुसलमान उसे ‘बर्तानवी मसीह’ कहा करते थे। अपने विरोधियों को घोर गन्दी गाली वलदाउलज़ना तक देता रहा। अंग्रेजों के विरुद्ध लड़नेवाले देशभक्त सिख सैनिकों को ‘नदी में डूब मरे’ बताकर अपमान किया। ‘सिखाशाही’ शब्दों का प्रयोग कर अंग्रेजी राज का स्वागत किया। लाला लाजपतराय, वीर अजीत सिंह के देश से निष्कासन पर उन्हें गोरशाही का नमकहराम लिखा। देश के विभाजन के लिये इस मत में अथाह जोश रहा। कई मुसलमान, ईसाई तथा आर्य हिन्दुओं की हत्या इस मत ने करवाई। मिर्जा के ग्रन्थ की विषयसूची में ये नाम दिये हैं। सब देशभक्तों का अपमान (गाँधी जी का भी) करने में आगे रहे। सर जफरुल्ला पाकिस्तान का विदेश मन्त्री इनका नेता रहा। इस ‘खूरैज पार्टी’ की प्रसिद्धि इतिहासप्रसिद्ध है। बाजवा इतने मिर्जाई भक्त!

अब क्या लिख रहे हो?- इसका उत्तर क्या दिया जावे? कड़ी शीत हटने दो फिर माननीय पं. रुचिराम जी की जीवनी, पं. देवप्रकाश जी की आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद अपने युवाप्रेमियों को सौंप दूँगा। ‘मैक्समूलर का एक्स-रे’ का दूसरा खण्ड (volume) आरम्भ हो चुका है। क्या खोया? क्या पाया? दस-पन्द्रह दिन तक छपने चला जावेगा। ऋषि के मिशन के युवा रक्षक सैनिकों सेवकों की इच्छा के अनुसार जो कुछ हो सकता है अन्तिम श्वास तक करता रहूँ। आर्यसमाज की पहली अग्नि-परीक्षा के एक तपे योद्धा वीर खण्डू सैनी सेवक आर्यसमाज पटियाला का नाम तक समाज भूल गया। उस पर भी एक ट्रेक्ट लिखने की उत्कट इच्छा है। अर्थव्यवस्था युवक ही करेंगे। किसी से माँगने की मुझे कुछ विवशता नहीं। प्रतीक्षा कीजिये क्या-क्या दे पता हूँ।

ऐतिहासिक कलम से....

गृहस्थ आश्रम की सफलता के उपाय

(सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास के आधार पर) - ४

प्रो. रामसिंह एम.ए.

अब आगे के अंकों में परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करायेगी जो 'आर्योदय' (सामाहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वाब्द के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें यह चतुर्थ लेख 'गृहस्थ आश्रम की सफलता के उपाय' आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो. रामसिंह एम.ए. द्वारा लिखा गया है। -सम्पादक

वैदिक आश्रम मर्यादा में गृहस्थाश्रम दूसरा आश्रम है। इसे यदि चारों आश्रमों का आधार कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। इस आश्रम की सफलता के लिए आवश्यक है कि आश्रम में प्रवेश के इच्छुक यथावत् ब्रह्मचर्य में आचार्यानुकूल वर्त कर, धर्म से चारों वेद, तीन व दो अथवा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़कर अखण्डित-ब्रह्मचर्य पुरुष वा स्त्री गुरु की यथावत् आज्ञा लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर-लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करें।

उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये। जो कुल, सत्क्रिया से हीन और सत्पुरुषों से रहित हों तथा जिनमें बवासीर, क्षय, दमा, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठादि भयानक रोग हों, उनकी कन्या वा वर के साथ विवाह होना अनुचित है- क्योंकि इस प्रकार के विवाहों से ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं।

कन्या पिता के गोत्र की नहीं होनी चाहिये तथा माता के कुल की छः पीढ़ियों में भी न हो। साथ ही कन्या का विवाह दूर देश में होने से हितकारी है, निकट रहने में नहीं। दूरस्थों के विवाह में अनेक लाभ हैं तथा निकट विवाह होने में अनेक हानियों की सम्भावना रहती है।

जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें, तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाण आदि

यथायोग्य होना चाहिये, जब तक उपर्युक्त गुणों में मेल नहीं होता, तब तक गृहस्थाश्रम में कुछ भी सुख नहीं मिलता।

बाल्यावस्था में तो विवाह करने से सुख होता ही नहीं। जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्या-ग्रहणरहित, बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है-वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक, विवाह के सुधार ही से, सब बातों का सुधार और बिगाड़ने से बिगाड़ हो जाता है। चाहे विद्या के ग्रहणपूर्वक पर्यन्त कुंवारे रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए। जिस-जिस देश में विवाह की श्रेष्ठ विधि और ब्रह्मचर्य-विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और समृद्ध होता है। सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह-समय उत्तम है।

परस्पर-सहमति

विवाह लड़का-लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिये, एक-दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह होने में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता-पिता का नहीं, क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध

में उन्हीं को दुःख होता है। इसीलिये जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती थी, वही उत्तम है।

जब तक सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा और अन्य आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के ही स्वयंवर विवाह करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जबसे यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता-पिता के आधीन विवाह होने लगे तब से क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि होती चली आयी। इससे इस दुष्ट काम को छोड़कर सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें।

कई एक लोग आपत्ति करते हैं कि विवाह-बन्धन में केवल दुःख भोगना पड़ता है, इसलिए यह क्यों न हो कि जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक मिले रहें, प्रीति छूट जाने पर एक-दूसरे को छोड़ दें, परन्तु इस प्रकार करने को हम पशु-पक्षी का व्यवहार मानते हैं, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे, तो गृहस्थाश्रम के अच्छे-अच्छे व्यवहार नष्ट-भ्रष्ट हो जायें, कोई किसी की सेवा भी न करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु हो शीघ्र ही मर जायें। भय-लज्जा भी न रहे। वृद्धावस्था में कोई सेवा न करे। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न ही किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकाल पर्यन्त स्वत्व रहे। इन दोनों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है।

यह भी स्मरण रहे कि एक समय में एक विवाह उचित है, परन्तु समयान्तर में अनेक विवाह हो सकते हैं। जिस स्त्री या पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो, अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका ऐसी ही अन्य स्त्री व पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए।

विवाह-प्रयोजन

स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से सन्तानोत्पत्ति करना। ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री-पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण विद्वान् योगियों के। संसार में व्यभिचार और कुकर्म को रोकने का श्रेष्ठ

उपाय यही है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें वह विवाह भी न करें तो भी ठीक, परन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनका वेदोक्त रीति से विवाह अवश्य होना चाहिये। आपात्काल में नियोग भी आवश्यक है। इसी से व्यभिचार न्यून, प्रेम से उत्तम सन्तान, स्वस्थ मनुष्यों की वृद्धि सम्भव है।

विवाह के प्रकार

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पाँचवाँ आसुर, छठा गान्धर्व, सातवाँ राक्षस, आठवाँ पैशाच।

इन विवाहों की यह व्यवस्था है कि वर-कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान्, धार्मिक और सुशील हों, उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' कहाता है। विस्तृत यज्ञ करके ऋत्विक् के कर्म करते हुए जामाता को अलंकारयुक्त कन्या का देना 'दैव'। वर से कुछ लेके विवाह होना 'आर्ष'। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना 'प्राजापत्य'। वर और कन्या को कुछ दे के विवाह होना 'आसुर'। अनियम, असमय किसी कारण से वर-कन्या का इच्छापूर्वक परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व'। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन, झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस'। शयन व मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच'। इन सब विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिए यही निश्चय रखना चाहिए कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिये, क्योंकि युवावस्था में स्त्री-पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।

विवाह से पूर्व

जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो तो उनके अध्यापक अथवा माता-पिता उनके गुण, कर्म और स्वभाव की भली-भाँति परीक्षा कर लें। जब दोनों का निश्चय विवाह करने का हो जाय, तो वे दोनों यदि अध्यापकों के समक्ष विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता-पिता के घर में विवाह होना योग्य है। कन्या और वर के खान-पान का उत्तम प्रबन्ध वैवाहिक विधि से पूर्व होना चाहिये, जिससे उनका ब्रह्मचर्य व्रत और विद्याध्ययनरूप

तपश्चर्या से दुर्बल शरीर चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो जाये।

पश्चात् उपयुक्त समय वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्धादि द्रव्य और घृतादि का होम करके वैदिक-विधि के अनुसार विद्वान् पुरुष और स्त्रियों के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह-विधि पूरी करें।

विवाह के पश्चात्

स्त्री और पुरुष अपने-अपने कर्तव्य को पूरी तरह समझें और जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें, क्योंकि उस वीर्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है, वह अपूर्व उत्तम सन्तान होती है।

पुरुष वीर्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन-छादन इस प्रकार करें, जिससे गर्भस्थ बालक का शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दसवें महीने में जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेष आठवें महीने से करना योग्य है। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रुक्ष, मादक द्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों का सेवन न करे, किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूँ, मूँग, उर्द आदि खानपान देश-कालादि के अनुसार करें। चौथे महीने में पुंसवन संस्कार और आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि-अनुकूल करे।

सन्तान-पालन

बालक के जन्म के समय बालक और उसकी माता की सावधानी से रक्षा करनी चाहिये। शुण्ठीपाक और सौभाग्यशुण्ठी पाक प्रथम से ही तैयार रहना चाहिए। बालक और उसकी माता को सुगन्धियुक्त उष्ण जल से स्नान कराना भी उचित है। नाड़ी-छेदन यथाविधि कराये। प्रसूति-गृह में सुगन्धादियुक्त घृत का होम करे। तत्पश्चात् बालक के कान में 'वेदोऽसि'- 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर, पिता मधु और घृत से बालक की जीभ पर 'ओ३म्' लिखे और शलाका से उसे चटा दे।

पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे शुद्ध स्थान पर बदल दें और वहाँ नित्य सायं-प्रातः सुगन्धित घी का हवन करें। बालक छः दिन तक माता का दूध पिये। छठे दिन स्त्री बाहर निकले। सन्तान के दूधादि के लिए यथावत् प्रबन्ध करें। बालक के पालन-पोषण में कोई

अनुचित व्यवहार न हो।

पश्चात् नामकरणादि संस्कार 'संस्कार-विधि' की रीति से यथाकाल करता जाये।

पुरुष के कर्तव्य

इस प्रकार स्त्री और पुरुष विधिपूर्वक गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए संसार में सुखपूर्वक रहें। पुरुष का कर्तव्य है कि सभी प्रकार से स्त्री को प्रसन्न रखे। जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उसमें पुरुष विद्यायुक्त होकर देव संज्ञा को प्राप्त होते हैं और आनन्द करते हैं। जहाँ स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

स्त्री के कर्तव्य

स्त्री को भी योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे और व्यय करने में भी संकोच से काम ले, अधिक उदारता न दिखाये अर्थात् यथायोग्य खर्च करे। पाकादि भी इस भाँति बनावे कि औषधरूप होकर शरीर और आत्मा में रोग न आने दे। आय-व्यय भी यथावत् रखे। घर के नौकर-चाकरों से यथायोग्य काम ले और घर के कार्यों में पूरी सावधानी बरते।

गृहस्थ के कर्तव्य

इस भाँति गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेमपूर्वक रहें। बुद्धि-धनादि की वृद्धि करनेवाले शास्त्रों को नित्य सुनें, और सुनावें।

यथाविधि दिन और रात्रि की सन्धि में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये।

पितृ-यज्ञ भी गृहस्थ का कर्तव्य कर्म है। श्रद्धा और भक्ति भाव से विद्यमान माता-पिता आदि पितरों की सेवा करना ही पितृयज्ञ और श्राद्ध-तर्पण है। परम विद्वानों, आचार्यादि की सर्वप्रकार से सेवा करना ही ऋषि-तर्पण है।

वास्तव में माता-पिता, स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी आदि तथा कुल के अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यानादि देकर

अच्छे प्रकार तृप्त करना, जिससे उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे-यही श्राद्ध और तर्पण है।

चौथा 'वैश्वदेव' यज्ञ है। जब भोजन सिद्ध हो जाये, तब उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षारयुक्त को छोड़कर घृत-मिष्टयुक्त अन्न लेकर मन्त्रों से आहुति दे दें तथा कुछ भाग पत्ते या थाली में भी मन्त्रों से आहुति देते समय रखता जाय। यदि कोई अतिथि हो तो उसको दे दे, नहीं तो अग्नि में ही छोड़ देवें। इसी प्रकार किसी दुःखी प्राणी अथवा कुत्ते, कव्वे आदि के लिये भी छः भाग अलग रख दे-पश्चात् उनको दे दिये जायें।

अतिथि यज्ञ भी आवश्यक है। यदि अकस्मात् कोई धार्मिक सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला पूर्ण विद्वान् परमयोगी संन्यासी गृहस्थ के यहाँ आ जाये तो उसका यथाविधि सत्कार करना, खानपानादि से सेवा-शुश्रूषा करना परम कर्त्तव्य है। समयानुसार गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं, परन्तु पाखण्डी, वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेवालों का वाणी मात्र से भी सत्कार न करे, क्योंकि इनका सत्कार करने से ये वृद्धि को पाते हैं-संसार को अधर्मयुक्त करते हैं और अपने सेवकों को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो देते हैं।

इन पाँचों महायज्ञों का अत्युत्तम फल होता है। धर्म की वृद्धि होकर संसार में सुख का संचार होता है।

गृहस्थ को अपनी दिनचर्या का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे। आवश्यक कार्य से निवृत्त हो धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे। अधर्म का आचरण कभी न करे।

अधर्मात्मा मनुष्य मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड और विश्वासघातादि कर्मों से पराये धन और पदार्थों को लेकर बढ़ता है, धनादि ऐश्वर्य, यान, स्थान, मान-आदि प्रतिष्ठा को भी प्राप्त कर लेता है, परन्तु शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, जैसे जड़ से कटा हुआ वृक्ष। इसलिये गृहस्थों को उचित है कि विद्वान्, पक्षपातरहित होकर सत्य का सदैव ग्रहण करें-असत्य का परित्याग करें। न्याय रूप वेदोक्त धार्मिक मार्ग ग्रहण करें-अन्यों को भी इसी प्रकार की शिक्षा दिया

करें।

धर्म से धन को कमायें और ऐसे धन को सत्पात्र में ही व्यय करें-अपात्र में धन का दुरुपयोग न करें। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य सत्यभाषण आदि तपरहित हैं, अशिक्षित हैं और दूसरों के धन पर अपना दाँत रखते हैं, उसी पर पलते हैं-ये तीनों प्रकार के अपात्र ही हैं। ये स्वयं भी डूबते हैं और अपने दाताओं को भी साथ डुबा लेते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ इस लोक और परलोक का सदा ध्यान रखें। धर्म का सञ्चय धीरे-धीरे करता जाये-क्योंकि धर्म ही के सहारे से दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है।

गृहस्थ जीवन में-विवाह होने के पश्चात् स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी होती है। जो उनके पारस्परिक हावभाव, नख-शिखाग्र-पर्यन्त जो कुछ भी हैं-वह एक-दूसरे के आधीन हो जाते हैं। अतः स्त्री वा पुरुष एक-दूसरे की प्रसन्नता विना कोई व्यवहार न करें। इनमें बड़े अप्रियकारक काम व्यभिचार, वेश्या-पर-पुरुषगमनादि हैं-इसको छोड़के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

वर्णाश्रम-व्यवस्था

जिस प्रकार गृहस्थ अपने विवाह वर्णानुक्रम से करते हैं-वैसे ही वर्ण-व्यवस्था भी गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये। जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और ऐसा ही आगे भी होगा।

जो नीच भी उत्तम वर्ण-कर्म-स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीचे काम करे, तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिये।

यजुर्वेद के इकत्तीसवें अध्याय के ग्यारहवें मन्त्र-
“**ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्...**” का अर्थ भी यही है कि जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य-उत्तम हो, वह ब्राह्मण, बाहु-बल-वीर्य जिसमें अधिक हो, वह क्षत्रिय; कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का ऊरू नाम है, जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे-आवे, प्रवेश करे, वह वैश्य; और जो पग के अर्थात् नीचे अङ्ग के सदृश मूर्खत्वादि

गुणवाला हो, वह शूद्र है। यही बात मनु ने भी कही है कि शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण-कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाये और वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण-कर्म-स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाये-इसी प्रकार क्षत्रिय या वैश्य कुलोत्पन्न भी ब्राह्मण या शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिना जावे। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं।

वर्ण-धर्म

चारों वर्णों के कर्तव्य, कर्म और गुण भी पृथक्-पृथक् हैं।

पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना-ये छः कर्म ब्राह्मण के हैं। वास्तव में “प्रतिग्रह” लेना नीच कर्म है। ‘शम, दम, तप, शौच, क्षान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य’-छः पहिले और नौ पिछले मिलाकर-ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें।

इसी प्रकार ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं-अर्थात् प्रजारक्षण, दान, इज्या-अग्निहोत्रादि यज्ञ करना-कराना, अध्ययन, विषयों में न फँसना, शौर्य, धृति (धैर्य), दाक्ष्य-राजप्रजा सम्बन्धी व्यवहार और शास्त्रों में चतुराई, युद्ध से न डरना, न भागना, दान, ईश्वरभाव-पक्षपातरहित होकर सबके साथ यथायोग्य वर्तना-प्रतिज्ञा पूरी करना-ये क्षत्रियों के धर्म हैं।

वैश्यों के गुण-कर्म भी इसी प्रकार गिनाये गये हैं-अर्थात् पशु-रक्षा, दान, इज्या (अग्निहोत्रादि), अध्ययन, वणिक्पथ (सब प्रकार के व्यापार करना), कुसीद (ब्याज-सौ वर्ष में भी दूने से अधिक न लेना), कृषि (खेती) करना-ये सब वैश्य-कर्म समझे गये हैं।

शूद्र को सेवा का अधिकार है। वह भी इसलिये कि

वह विद्यारहित है, मूर्ख है। विज्ञान-सम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता। वह केवल शरीर से ही कार्य कर सकता है-वही उससे लेना उचित है। वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्यजनों का काम है।

गृहस्थ का महत्त्व

इस प्रकार गृहस्थाश्रम (विवाह करके गृहस्थ बनना) बहुत महत्त्वपूर्ण आश्रम है। कुछ लोग पूछा करते हैं-यह आश्रम सबसे छोटा है-अथवा बड़ा? हम तो यही कहते हैं कि अपने-अपने कर्तव्य कर्मों में सब बड़े हैं, परन्तु जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते रहते हैं, जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं। बिना इसके किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तीनों आश्रमों को दान-अन्नादि देकर गृहस्थ ही धारण करता है, इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है अर्थात् सभी व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है। इसलिये जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता है, वह प्रयत्न से गृहाश्रम को धारण करे।

जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहस्थाश्रम है। जो यह गृहस्थाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति न होती-फिर ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते?

जो गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है-जो प्रशंसा करता है, वही प्रशंसनीय है।

परन्तु स्मरण रहे यह पुण्य गृहस्थाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरू और निर्बल पुरुषों से धारण करने योग्य नहीं है और गृहाश्रम में सुख भी तभी होता है, जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहस्थाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है। समावर्तन, विवाह और गृहस्थाश्रम के विषय में यह संक्षिप्त शिक्षा लिखी गयी है।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

जहाँ ज्ञानी बुद्धिमान् होते हैं, वहाँ स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है

कन्हैयालाल आर्य

स्वयं परमपिता परमात्मा ने मानवी-सृष्टि के प्रारम्भ में जो मूल उपहार मानव मात्र को दिया है-वह वेद है। वेद अर्थात् ज्ञान। वेद का सन्देश है 'मनुर्भव' = मनु बन = ज्ञानी बन। (मनु अवबोधने) मनुः का अर्थ है ज्ञानी, मननशील। परमात्मा जब भी हमें कुछ देता है- तो वह ज्ञान-प्रज्ञा-विवेक देता है। इसलिए तो परमात्मा के 'भक्त'-ज्ञानी-ध्यानी विवेकी कहे जाते हैं। गीता ४/३८ में कहा है-

“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते” (इह, ज्ञानेन, सदृशम्) इस संसार में ज्ञान के समान (पवित्रम्, हि, न, विद्यते) पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है, परन्तु यह ज्ञान उपदेश से नहीं मिलता। जब मनुष्य कर्मयोग में पवित्र होकर अपने आपको आहूत कर देता है उसे ही इस ज्ञान की पवित्रता का साक्षात्कार हो जाता है और बड़े से बड़ा पापी भी इस मार्ग पर चलकर अपने अन्दर एक चमत्कार पाता है। स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती और भक्त अमीचन्द इसके स्पष्ट उदाहरण हैं जिन्होंने किसी समय पतनमार्गी होते हुए भी पवित्र ज्ञान के प्राप्त होने पर सर्वजनहिताय के लिए अपना जीवन आहूत कर दिया।

जो कुछ भी हम मन के द्वारा जानते हैं, वह केवल जानकारी है, ज्ञान नहीं है। जानकारी कभी भी स्थायी नहीं होती, वह निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। विज्ञान के सिद्धान्त भी व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी हो सकते हैं, क्योंकि उनका निर्माण मनुष्य ने किया है, परन्तु उसे भी आप ज्ञान नहीं कह सकते। सच्चा ज्ञान वह है जहाँ मनुष्य अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से ऊपर उठकर समष्टि के साथ तादात्म्य अनुभव करते हुए सत्य का साक्षात्कार करता है, परन्तु वह ज्ञान कुछ ही दिनों में प्राप्त नहीं किया जा सकता इसके लिए सतत साधना तथा धैर्य आवश्यक है।

सच्चिदानन्द परमेश्वर का संग-साथ न हो तो जीवन भर दुःख-सन्तापों से घिरे-हम रोते ही रहते हैं। जिसने परमपिता परमात्मा का वरण कर लिया- जिसने परमदेव के दिव्य तेज को धारण कर लिया-वह सदा ही सत्य-

अहिंसा, प्रेम के पावन कुञ्जों में बसता है। वह स्वयं सदा प्रसन्न रहता है और दूसरों को प्रसन्नता बाँटता है। संस्कृत में प्रसन्नता के लिए जो शब्द है-वह है 'प्रसाद'। प्रसाद बाँटने का अर्थ है- प्रसन्नता बाँटना। जो दुःखी है- वह 'प्रसाद' नहीं, विषाद बाँटता है और जो सुखी है, वह प्रसाद बाँटता है। परमात्मा के दिव्य तेज को धारण करनेवाला प्रतिपल-प्रतिक्षण-श्रेष्ठतम गुण-कर्म-स्वभाव को ही अपनाता है। दूसरों के दोष-अवगुण देखने की प्रवृत्ति छूट जाती है। वह सतत भद्र ही देखता है, भद्र ही सुनता है, भद्र ही बोलता है। वह प्रयत्न-पुरुषार्थ से कभी आलस्य, प्रमाद नहीं करता। वह प्रतिपल कमर कसकर तैयार रहता है।

वह परमात्मा 'सविता' है, जगत् रचयिता है। कण-कण में उसका वास है। यजुर्वेद (४०/१) में कहा है-

“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”

अर्थात् जो कुछ इस नाशवान् संसार में खण्ड या अखण्ड पदार्थ हैं, वे सब ईश्वर से व्याप्त और ईश्वर से आवासित हुए हैं, अर्थात् परमेश्वर हर वस्तु में विद्यमान है। पर्वत की कोई ऐसी गहरी गुफा नहीं है, कोई चोटी नहीं, समुद्र का कोई गहरे से गहरा तल नहीं जहाँ ईश्वर विद्यमान न हो। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि जितने लोक-लोकान्तर हैं, सब स्थानों में ईश्वर विद्यमान है। मनुष्य ईश्वर से कहीं छिप नहीं सकता है, जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु आकाश में है और प्रत्येक वस्तु के भीतर भी आकाश है, इसी प्रकार से ईश्वर भी जगत् में ओत-प्रोत हो रहा है। कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो ईश्वर में न हो और जिसमें ईश्वर न हो। इस सिद्धान्त के आचरण में आने से मनुष्य का हृदय लचीला हो जाता है। हृदय के लचीला होने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है। प्रथम वह निष्पाप हो, दूसरे उसमें प्रेम की मात्रा अधिकता से हो। ये दोनों बातें ईश्वर को सर्वव्यापक मानने से मनुष्य में आया करती हैं।

'जगत्' का अर्थ है 'गतिमान्'। संसार में सभी कुछ

गतिमान् है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र, नक्षत्र आदि सभी गतिमान् हैं, इनके एक-एक कण में गति है। तो क्या गति यूँ ही हो रही है? नहीं, इस गति को कोई देने वाला है, कोई 'ईश' है अर्थात् कोई स्वामी है। वह स्वामी कहीं अलग बैठा गति नहीं दे रहा, वह गति करने वाला अणु-अणु में विद्यमान है। जब वह एक-एक अणु में बसा हुआ है और 'ईश'- 'स्वामी' के कारण बसा हुआ है, तब तो यह सब उसी का है, हमारा क्या है? मनुष्य यदि यह धारणा कर ले तो वह पापाचरण कभी नहीं करेगा।

मनुष्य पापाचरण के लिए सदैव एकान्त की खोज किया करता है, परन्तु ईश्वर का विश्वास होने पर पापाचरण के लिए एकान्त स्थान मिल ही नहीं सकता। जब तक मनुष्य के हृदय में नास्तिकता न आये तब तक वह पाप नहीं करता। इसलिए ईश्वर के सर्वव्यापकत्व पर विश्वास होने पर ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है, आस्तिक हो जाता है। जब मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक मानेगा तो वह प्रत्येक प्राणी में ईश्वर की सत्ता स्वीकार करेगा तब वह प्रत्येक प्राणी चाहे वह उत्तम हो या निकृष्ट, किसी से भी घृणा नहीं करेगा। घृणा भी नास्तिकता से उत्पन्न होती है। जिससे कोई घृणा करेगा, अवश्य उसमें ईश्वर की सत्ता का अभाव मानेगा। इसी का नाम नास्तिकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि निष्पापता और प्रेम से मनुष्यों के हृदयों में लचीलापन (कठोरता, घृणा का अभाव) आया करता है और इन साधनों की प्राप्ति ईश्वर के व्यापकत्व पर विश्वास होने से ही हुआ करती है।

जो लोग ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं अर्थात् ईश्वर को सर्वव्यापक नहीं मानते, वे पाप करते रहते हैं और जन्म-मरण के दुःखों को भोगते रहते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि ईश्वर को कण-कण में बसा मानकर और इसके विपरीत होना मानने को दुःखों का मूल समझकर, पाप करने के लिये कभी भी तैयार नहीं होना चाहिये।

जो ईश्वर को 'स पर्यगात्' ऐसा मानेगा, वह इधर-उधर नहीं भटकेगा। चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके-शुभगुणों में स्थिर करके परमेश्वर का आश्रय प्राप्त कर मोक्ष को कहते हैं अर्थात् मन को दुरित-दुर्गुण से हटा

लेने पर ही हम उस परमात्मा को देख, जान सकते हैं- अन्यथा नहीं। ऋषि आगे लिखते हैं, "जैसे शीत से आतुर पुरुष (मनुष्य) का-अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है-वैसे परमेश्वर के समीप होने से सब दोष छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश-जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख आने पर भी नहीं घबरायेगा और सबको सहन करेगा।" (सत्यार्थप्रकाश, ७ समुल्लास)

साधारणतया हम कई महापुरुषों को देखते हैं कि वे इस संसार को छोड़कर वनों में, गुफाओं में, कन्दराओं-उपत्यकाओं में, पर्वतों पर- जिन्हें संसार असार लगा, चले गये, वहीं वे जब ज्ञान, योग, समाधि को प्राप्त कर गये- तो फिर लौट आये, जगत् में और उद्घोषणा की कि पहले हम सोचते थे कि संसार बाधा है, जगत् की वस्तुएँ बाँधती हैं, पर अब सब स्पष्ट हो गया है- जब तक परमेश्वर के सर्वव्यापकत्व का ज्ञान नहीं था- तब तक ही संसार काट खाने को दौड़ता हुआ प्रतीत होता था और अब जबकि वह उपलब्ध हो गया- तो संसार खो गया है। अब तो सर्वत्र वही है। उपनिषद्कार ने 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की घोषणा की और वेद ने 'तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः'- उस सर्वव्यापी विष्णु के परमपद को ज्ञानीजन ही सदा देखते हैं, प्रत्यक्ष करते हैं।

मुण्डकोपनिषद् (२/२/८) में कहा है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

(तस्मिन्) उस (परावरे) सूक्ष्म और महान् (ईश्वर) को (दृष्टे) देख या जान लेने पर (हृदयग्रन्थिः) हृदय की गाँठ अर्थात् बन्धन का हेतु वासना (भिद्यते) खुल जाती है, (सर्वसंशया) समस्त संशय (छिद्यन्ते) नष्ट हो जाते हैं (च) और (अस्य) इस मुमुक्षु के (कर्माणि) समस्त वासना पैदा करने वाले सकाम कर्म (क्षीयन्ते) क्षीण हो जाते हैं अर्थात् जब कोई पुरुष इन्द्रियों के अनुभव न होने योग्य परमात्मा को भीतर ज्ञान-चक्षु से देख लेता है, तब उसके हृदय की गाँठें अर्थात् सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध टूट जाता है।

सन्देहों का सम्बन्ध मन से है मन का सूक्ष्म शरीर से। जब सूक्ष्म शरीर ही न रहा तो मन कहाँ? जब मन ही नहीं तो उसमें उत्पन्न होने वाले सन्देह कहाँ? जब सम्पूर्ण सन्देह दूर जाते हैं और जब मन ही नहीं रहता? फिर सब कर्मों के संस्कार रहते हैं तो उसमें रहने वाले कर्म किस प्रकार रह सकते हैं। उस ज्ञानी के सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब तक कर्मों का अभिमान बना है, तब तक ब्रह्मज्ञान या मुक्ति नहीं हो सकती है। जब मुक्ति होती है तो कोई कर्म शेष नहीं रहता। जैसे प्रेम का स्थूल-रूप 'शरीर' है, सूक्ष्म रूप 'मन' है और सूक्ष्मातिसूक्ष्म-मूलस्वरूप 'आत्मा' है। प्रेम का प्रारम्भ 'तन' से प्रारम्भ होता है, मध्य में 'मन' और अन्त में 'आत्मा'। जब प्रेम तन पर टिक जाता है तो यह वासना, मोह-मूढ़ता का रूप ले लेता है। वही प्रेम जब मन तक पहुँच जाता है तो वासना छूटने लगती है- पर भीतर सूक्ष्म-वासना विद्यमान रहती है, अहंकार बना रहता है और वही प्रेम जब आत्मतल पर पहुँच जाता है-तो उपासना बन जाती है, भक्ति हो जाती है, परन्तु भक्ति को साधारण मूढ़जन मूर्तियों के गढ़ने में ही मान लेते हैं। हम इन मूर्तियों को ही परमात्मा मान लेते हैं। मूर्तियाँ हमें निर्मित नहीं करती हैं। जगत् ही उसकी प्रतिमा है। इसे ही उसका बाह्य स्वरूप जानो। जगत् के सभी चर-अचर प्राणियों से प्रेम करो-वही उसके प्रति भक्ति का प्रथम व अनिवार्य चरण है। परमात्मा 'सविता' है। यह जगत् उसकी ही कृति-रचना है। हमारा तन इस जगत् से बाहर नहीं है और जो कुछ भी धन-सम्पदा है- सब उसी की है। यह जानते हुए जो जीता है- वही ज्ञानी भक्त है। उसकी प्रज्ञा प्रकृष्ट-गुण, कर्म व स्वभाव को धारण कर पाती है।

इसलिए प्रत्येक सन्त, ज्ञानी, महापुरुष, मनीषी, विद्वान् जब भी संसार को कुछ देने की बात करता है या देता है तो मात्र बुद्धि, विवेक, प्रज्ञा। यह ज्ञान वेदों से प्राप्त होता है। इसे ही ब्रह्मज्ञान, परमदान, महादान कहा है। मनुस्मृति में कहा है-

'सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते'

सब दानों में 'ब्रह्मदान' ही सबसे अधिक विशिष्ट है, महान् है, क्योंकि सब दुःखों के मूल में अज्ञान, अविद्या ही है और सब सुखों के मूल में विवेक ज्ञान है। विवेक होने

पर सब विपदायें, बाधायें स्वतः ही दूर हो जाती हैं, तभी तो योगदर्शन में कहा है

'तस्य सम्यक् दर्शनमेव अभावहेतुः'

-सम्यक्-दर्शन, विवेक ही अज्ञान के अभाव का कारण है, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार मिट जाता है वैसे ही विवेक के उदय होने पर विपदायें विदा हो जाती हैं।

यह 'गायत्री मन्त्र' जप स्मरण का मन्त्र है, पर स्मरण का अर्थ शब्दों को बार-बार दोहराना ही नहीं है। जप-स्मरण के साथ समझ, प्रज्ञा, विवेक भी चाहिये। बिना सुमति के सुमिरन सम्भव नहीं है। बिना सुमति के हम जो कुछ भी करेंगे-उससे हमारी मूढ़ता और अधिक होगी। हम अपनी प्रार्थनाओं में सम्पत्ति-समृद्धि की तो कामना करते हैं, परन्तु सम्पत्ति का जो मूल आधार है- उस सुमति, प्रज्ञा, मेधा की प्रार्थना नहीं करते हैं। जिस दैवी सम्पदा से हम परमात्मा को पाने के अधिकारी होते हैं-वही सम्पदा ही वास्तविक सम्पदा है। गायत्री मन्त्र में जिसे 'धी' कहा है। तुलसी उसे 'सुमति' कह देते हैं। भगवद्गीता में उसे 'पवित्र ज्ञान' कहा है। सांख्यशास्त्र में महर्षि कपिल ने इसे 'तत्त्व-ज्ञान' कहा है। भगवान् व्यास इसे 'यथार्थज्ञान' कहते हैं। महर्षि पतंजलि इसे 'विवेकख्याति', आदि शंकराचार्य इसे 'विवेक' और महर्षि दयानन्द जी इसे 'सत्यार्थप्रकाश' कहते हैं। इस गायत्री मन्त्र को गुरुमन्त्र, महामन्त्र, सविता मन्त्र, वेदमाता आदि अनेकों नामों से पुकारा जाता है।

इस जगत् में सभी की कामना है-वित्त की, धन की। हमें लगता है जीवन में 'वित्त' नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। धन नहीं तो समझो 'निधन' ही हो गया। ऐसे लोगों ने 'धन' को ही जीवन में महत्त्व दिया- धन बटोरो, सम्पत्ति एकत्रित करो। धन होगा तो निर्धनता मिट जायेगी, समाज में मान होगा, परन्तु मृत्यु के क्षणों में पता चलता है-नहीं, यह वह धन नहीं है- वह धन तो सत्य है, ज्ञान है। मृत्यु के समय ही पता चलता है कि आत्मा-रूपी धन चला गया-इसीलिए मृत्यु आ गई और इस धन की हमने कभी चिन्ता नहीं की, इसकी कभी खोज नहीं की। सारा जीवन धूल-मिट्टी एकत्रित करते रहे- जो, यही सब छूट रहा है। मृत्यु के क्षण में दोहराते हैं 'राम नाम सत्य है' सारा जीवन इस सत्य को

जाना नहीं अब मृत्यु के क्षण में बोध होता है- पर अवसर चूक गये। केनोपनिषद् (२/५) में कहा है-

**“इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो
चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।”**

(इह) इस जन्म या संसार में (चेत्) यदि (अवेदीत्) आत्मा को जान लिया (अथ) उस दशा में (सत्यम्) जीवन सफल (अस्ति) है। (चेत्) यदि (इह) इस जन्म में (न, अवेदीत्) आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया तो (महती विनष्टिः) बड़ी हानि या विनाश हुआ।

अर्थात् यदि मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में अपने लक्ष्य की ओर ठीक-ठीक प्रवृत्त हो गया तो उसने अपने जन्म के लक्ष्य को पा लिया। यदि प्राणी इस मनुष्य तन में जो कर्तव्य और भोक्तव्य दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है, ईश्वर को जान ले तो मुक्ति प्राप्त हो सकती है। यदि इस शरीर को केवल भोग-भावना में ही लगाये रखा और परमात्मा को जानने के स्थान में दिन-रात केवल शरीर की पुष्टि का यत्न ही करता रहा तो उस अवस्था में महान् विनाश होता है, क्योंकि नर-तन के झूटते ही स्वतन्त्रता अर्थात् कर्तव्य की शक्ति समाप्त हो जाती है, फिर अनेक जन्मों तक भोग-योनियों अर्थात् ज्ञानशून्य देहों में धक्के खाने पड़ते हैं तब कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। अतः विवेकीजन प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ में कर्मफल प्रदाता तथा गति प्रदाता परमात्मा को विवेक-दृष्टि से देखते हैं और कर्म करने में स्वतन्त्रता का प्रयोग करते हैं, तब इस शरीर को छोड़कर मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अभी से धर्म-विचार में रत रहकर परमात्मा को जानने का यत्न करता है, वही सफल होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य जीवन को केवल संसारी कार्यों में लगाये रखता है वह अपनी महती हानि कर रहा है।

एक बहुत ही सुन्दर दृष्टान्त हमारी इस बात को स्पष्ट करता है- एक व्यक्ति मृत्यु के अत्यधिक निकट था। परमेश्वर ने उससे पूछा, “तुम चाहो तो स्वर्ग में भी जा सकते हो और नरक में भी।” उस व्यक्ति ने कहा, “प्रभु! मैं समझा नहीं। भगवान् ने कहा, तुम स्वर्ग में जाना चाहो या नरक में, परन्तु इतनी शर्त है कि दो मूर्खों के साथ स्वर्ग

जाना पसन्द करोगे या दो बुद्धिमानों के साथ नरक में।” उस व्यक्ति ने कहा, “प्रभो! मुझे दो बुद्धिमानों के साथ नरक में भेज दीजिये।” भगवान् ने कहा, “तुमने स्वर्ग क्यों नहीं चुना?” उस व्यक्ति ने कहा, “प्रभो! जहाँ ज्ञानी बुद्धिमान् होते हैं वहीं स्वर्ग होता है और जहाँ मूढ़-मूर्ख होते हैं वहाँ नरक होता है। मूढ़ मूर्ख का संग दुष्ट का संग है, कुसंग है।” कहने का तात्पर्य यह है कि सन्तों, ज्ञानियों, धार्मिक बुद्धिमानों का संग ही परमात्मा की भक्ति का पहला मार्ग है।

(यह स्मरण रहे कि स्वर्ग और नरक किसी स्थान का नाम नहीं है। यह तो केवल एक दृष्टान्त है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्वर्ग को सुख विशेष और नरक को दुःख विशेष कहा है। दृष्टान्त तो केवल समझाने के लिए ही दिये जाते हैं इसका अन्यथा अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये।)

अर्थात् जो प्रभु के भक्तों का, ज्ञानीजनों, बुद्धिमानों का संग पा लेता है वही परमात्मा को पाने का मार्ग पा लेता है। इसीलिए स्वर्ग की चिन्ता मत करो, सुमति, सुबुद्धि की चिन्ता करो। तभी तो गायत्री मन्त्र में कहा है-

‘धियो यो नः प्रचोदयात्।’

दुर्जन, दुष्ट और कोई नहीं बल्कि दुरित-दुर्गुण-दुर्व्यसन से भरा मन ही दुर्जन है। **एक शब्द है-**सुमन जिसका मन ‘सु’ अर्थात् सत्य, शिव, सौन्दर्य से भरा हुआ है तभी तो बारम्बार प्रार्थना की जाती है

(तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु- यजुर्वेद ३४/१)

मेरा मन शिव संकल्पों वाला हो। ‘मन’ सत्य, शिव व सौन्दर्य से भरपूर हो, यही प्रार्थना है। मन यदि हताश-निराश ‘दुः’ है तो सारे संसार में कुरूपता ही दिखाई देती है और यदि ‘सु’ है, प्रसन्नता है तो पतझड़ में भी अपूर्व सौन्दर्य दीख पड़ता है। अतः ‘सु’ मन, ज्ञानी, बुद्धिमान्जनों का संग करना चाहिये, वहीं पर स्वर्ग है और परमात्मा से सदैव अच्छी बुद्धि की न केवल प्रार्थना करनी चाहिये बल्कि उस प्रार्थना को पुरुषार्थ द्वारा अपने जीवन में अपनाकर जीवन को सार्थक करना चाहिये।

४/४५, शिवाजीनगर, गुरुग्राम, हरियाणा।

चलभाष : ९९१११९७०७३

एक दैदीप्यमान नक्षत्र का त्रासद अवसान

डॉ. रामप्रकाश वर्णी डी.लिट्.

अशेष श्रद्धाभाजन आचार्य श्री सत्यानन्द वेदवागीश का सामान्य परिचय तो मैं अपने 'प्रथमावृत्ति' के अध्ययनकाल में ही अर्च्य आचार्य श्री ओङ्कार जी-वेरनी-मथुरा से 'पाणिनि महाविद्यालय-बहालगढ़-सोनीपत (हरियाणा)' में ही प्राप्त कर चुका था, परन्तु जब मैं ई. सन् १९७८ में शास्त्र-द्वितीय खण्ड के अध्ययनार्थ श्री आर्ष गुरुकुल-चित्तौड़गढ़ में पहुँचा तो सम्भवतः अक्टूबर या नवम्बर मास में जब वे इस गुरुकुल के प्रतिष्ठित आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए, तब उनके विशिष्ट 'व्यक्तित्व' और 'कर्तृत्व' से न केवल परिचित ही हुआ प्रत्युत उनकी सर्वातिशायिनी प्रभविष्णुता से आज तक प्रभावित हुआ चला आ रहा हूँ। उनके जीवन के मरन्द-इन्दु की चन्द्रिका से विधौत वे समुज्ज्वल-पक्ष मुझे यावज्जीवम् उत्प्रेरित करते रहेंगे। पाठकगण भी उनसे लाभान्वित हो सकते हैं। इसलिए मैं यहाँ उनके कुछ संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१. यथानाम तथा गुण- यह प्रसिद्ध 'वाग्योग' हमारे अर्चनीय आचार्य पर शतप्रतिशत सटीक बैठता है। उन्होंने बड़ी-से-बड़ी हानि उठाकर भी कभी असत्य से समझौता नहीं किया, भले ही उनकी आजीविका के विनष्ट होने का ही प्रश्न क्यों न उपस्थित हो गया हो। वे सदैव "न्याय्यात्यथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" के उदात्ततम उदाहरण बने रहे। यही कारण था कि उन्होंने 'वेदानन्द वेदवागीश' की उस असाधारण त्रुटि को कभी क्षमा नहीं किया, जिसके लिये उनके आचार्य स्वा. ब्रतानन्द जी महाराज सदैव आग्रह करते रहे। कई संस्थाओं और उनके प्रतिष्ठापूर्ण पदों को इसी कारण छोड़ने में उन्होंने पल भर की भी देर नहीं लगायी। वे 'वेदवागीश' उपाधि से सुशोभित नहीं हुए, अपितु यह 'उपाधि' उन्हें पाकर सुशोभित ही नहीं हुई, धन्य-धन्य भी हो गयी। विविध भाष्यों के साथ 'शुक्ल यजुर्वेद' माध्यन्दिन-वाजसनेयि-संहिता तो उन्हें आद्योपान्त स्मरण थी ही, अन्य वेदों में भी उनकी गहरी पैठ सभी वेदाध्येताओं के लिए स्पृहणीय थी। इस दिशा में 'ऋषि-भाष्य' के भावार्थ को लेकर उनके द्वारा किया गया कार्य

प्रशस्य तो है ही, वह उन्हें ऋषित्व की कोटि में लाकर खड़ा कर देता है। कहीं-कहीं तो उनका यह तलस्पर्शी वैदुष्य और पराङ्गोटिकी सत्यनिष्ठा उन्हें 'कुलवकर' भी बनाते हुए दृष्ट होती है। वे 'ज्योतिषां ज्योतिरेकम्' के स्थान पर 'ज्योतिषां ज्योतिरेकम्' का आरटन करने वाले वैदिकों से सदैव प्रश्न करते थे 'ज्योतिषामिति किम्'? किं ज्योतिर्खनतीति ज्योतिषः इत्यर्थोऽस्य व्युत्पत्ति-लभ्यः? आहोस्वित् प्रवृत्तिनिमित्त-लभ्यः? हास-परिहास की शैली में चुटकियों में ही बड़े-बड़े व्यङ्ग्य करना उनके लिए साधारण बात थी। भले ही बालविवाहित होते हुए भी विवाह न करने की रक्ताक्त हस्ताक्षरित स्वप्रतिज्ञा का वे अक्षरशः पालन न कर सके हों, तो भी उन्होंने अपने उत्कट ब्रह्मचर्य की उद्दाम-बल्लगा को ऐसा खींच कर रखा कि देखते-देखते ही उनके सामने कन्दर्प-दर्प चूर-चूर हो गया। धन्य हैं ऐसे दृढसत्यव्रती आचार्य और उनका यह अनुकरणीय चरित्र।

२. स्वाध्यायसत्र के सफल आर्त्विजीन- आदरणीय आचार्य जी भले ही किसी संस्था में बँधकर रहे या नहीं रहे, फिर भी उन्होंने अपने आचार्य द्वारा ग्राहित व्रत 'स्वाध्यायान्मा प्रमद' की कभी भी उपेक्षा नहीं की। भीषण विपरीत परिस्थितियों में भी वे अपने उस स्वाध्याय सत्र का निरन्तर सञ्चालन करते रहे। यही कारण था कि जब 'गुरुकुल-चित्तौड़गढ़' में 'काशिकावृत्ति' और 'महाभाष्य' पढ़ाने लगे, तब मैंने और मेरे एक साथी ने उनसे जब यह पूछा कि 'परोक्ष-भूतकाल' में विधेय 'लिट्' लकार में 'उत्तमपुरुष' का क्या औचित्य है? तो उनके मुखारविन्द से त्वरित ही ये दोनों वार्त्तिक निकल पड़े, 'सुप्तमत्तयोरुत्तमः' और 'अत्यन्तापवहे लिड्वक्तव्यः'। वे कहने लगे आज आपने डेढ़ दशक वर्ष पूर्वपठित विषय की याद दिला दी। वहीं वे एक और प्रश्न जो कि 'विभाषा श्वेः' (अष्टा. ६/१/३०) और 'न वेति विभाषा' (अष्टा. १/१/४४) सूत्रों से सम्बद्ध था के उत्तर में जब लड़खड़ाये तो हमें हमारे प्रश्न का 'मिथ्या उत्तर' न देकर तुरन्त अपने आचार्य आदरणीय

श्री भीमसेन जी के पास जाकर उनसे पूछने के बाद हमें सन्तुष्ट किया और कहा ऐसे ही प्रश्न पूछा करो, इससे हम आचार्य और तुम छात्र दोनों की उन्नति होगी। 'सरुपाणामेकशेष एक विभक्तौ' (अष्टा. १/२/६४) सूत्र के महाभाष्य में प्रचर्चित पाँचों पक्ष उनको हस्तामलकवत प्रत्यक्ष थे। 'समर्थः पदविधिः' (अष्टा. २/१/१) इस सूत्र के महाभाष्य के 'क्रियावचनोधातुः' और 'भाववचनोधातुः' इन दोनों पक्षों के समझाने का उनका अपना ही तरीका था। 'न्यायकुसुमाञ्जलि' के तो वे पूर्ण रसिक ही थे। वे किसी भी शास्त्र को भलीभाँति समझ लेने के बाद उसे रटकर स्मरण रखने के प्रबल पक्षधर थे। जब भी उन्हें एकान्त मिलता, तब वे कुछ न कुछ विषयवस्तु स्मरण करते हुए देखे जा सकते थे। इस आधार पर उन्हें बेझिझक स्वाध्यायसत्र का सफल आर्त्विजीन कहा जा सकता है।

३. अकिञ्चन मनस्वी— जब दक्षिण भारत में तत्काल समारम्भ किये गये किसी सान्ध्य महाविद्यालय में नवनियुक्त प्राचार्य म. म. पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी ने इन्हें वहाँ प्राध्यापक नियुक्त करवाया, तब ये अपनी 'लालसोट' के किसी विद्यालय में स्थायी राजकीय-वृत्ति को छोड़कर वहाँ चले गये और वह महाविद्यालय भी किन्हीं कारणों से कुछ दिन बाद ही सदा-सदा के लिए बन्द हो गया। इसका युधिष्ठिर मीमांसक जी पर तो क्या प्रभाव पड़ना था, क्यों वे किसी राजकीय-वृत्ति में थे ही नहीं, परन्तु हमारे आचार्य जी "न खुदा ही मिला न विसाल-ए-सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे" की स्थिति में अवश्य आ गये। फिर भी वे 'त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले' के उत्कृष्ट उदाहरण बने रहे और न कभी घबराये न किसी के सामने वित्तीय साहाय्य के लिए गिड़गिड़ाये। यावज्जीवं पौरोहित्य और औपदेशिक्य का समाचरण करते हुए भी अधुनातन पुरोहितों की भाँति 'कुटिल-कुलीरकत्व' का उन्होंने कभी भी समाश्रयण नहीं किया। जिस किसी ने उन्हें जब भी, जो कुछ भी द्रव्य दक्षिणात्वेन दे दिया, उसे उन्होंने बिना देखे ही चुपचाप सहर्ष स्वीकार कर स्वकीय आशीराशिः प्रदान कर उस दाता को कृतकृत्य कर दिया। वैदिक-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की ऐसी अविराम-अभिराम ललक कि "मुझे चाहे कुछ देना या मत देना, पर

मेरे विचार तो सुन लो" आचार्य जी के जीवन में कई बार देखने को मिली। वे कभी भी "यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरुतो मा ब्रूहि दीनं वचः" के आदर्श को भुला नहीं सके। वे सदैव "मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केशरी" को स्वजीवन में चरितार्थ करते रहे।

४. ब्रह्मगवी के श्रद्धेय दोगधा— वैदिक वाङ्मय के तलस्पृक् विपश्चित् आचार्य श्री पं. सत्यानन्द वेदवागीश का वेदवैदुष्य 'पल्लवग्राहिपाण्डित्य' या लटके-झटकों तक सुसीमित दम्भ मात्र नहीं था। वे किसी भी वेदपारायण-यज्ञ में मूलवेद संहिता से ही महीनों व्याख्यान दे सकते थे। वेद के किसी भी मन्त्र का अर्थ उनसे कभी भी पूछा जा सकता था। व्याकरणात्मक व्युत्पत्ति ऐसी कि उनकी ऊहा नित्यनूतन दिव्य-भव्यभावों का सृजन करती थी। वे कहते ही नहीं करते भी थे। तभी अपने सीमित सन्साधनों के होने के बावजूद वे ऋषि-भाष्य के भावार्थ को लेकर उत्तम ग्रन्थ-प्रणयन में समर्थ सिद्ध हुए। सप्ताहपर्यन्त चलने वाली उनकी गायत्री-कथा निश्चय ही ब्रह्मगवी का वह उत्तम दुग्ध था जिसकी तुलना गीता के सांख्य-योग से की जा सकती है। पाणिनीय उपदेश-पञ्चक के तो वे श्रद्धेय समुपासक ही थे। कभी किसी व्यक्ति के यह कहने पर कि पाणिनीय अष्टाध्यायी कभी कण्ठस्थ नहीं हो सकती है, तुरन्त ही उन्होंने उसे अष्टाध्यायी के चार अध्याय खड़े-खड़े ही सुना दिये थे, शेष अध्याय उस व्यक्ति ने समयभाव का बहाना बनाकर नहीं सुने। पर, आचार्य जी के प्रति उसकी श्रद्धा चतुर्गुणित हो गयी। आचार्य जी की यही अष्टाध्यायी-निष्ठा उन्हें इसकी वैदिक उदाहरणोपेत व्याख्या कराने का कारण बनी। इसी ध्वनि में उन्होंने पाणिनीय 'धातुपाठ' को लेकर जो महत्तम ग्रन्थ लिखा, वह सदियों तक 'मील का पत्थर' बना रहेगा। उनके निधि-शब्दान्त कई अन्य ग्रन्थ भी उनके लोकसंग्रह का कारण बने हैं। वेद की दुरुह गुत्थियों को सुलझा पाना उनके ही वश की बात थी।

५. स्वरशास्त्रनिष्णात धुरीण नैरुक्त— पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रतिपादित स्वर-शास्त्र का व्यावहारिक शास्त्रीय ज्ञान उनकी असाधारण विशेषता थी। इसके लिए उन्होंने

‘अष्टाध्यायी, फिट्सूत्र’ और ‘उणादिकोष’ को भली भाँति हृदयङ्गम कर रखा था। यही नहीं ‘गण-पाठ’ में भी उनकी गहरी पैठ थी। तभी तो वे न केवल वेदमन्त्रों के स्वरसाधन में ही लगभग ९५% सफल हुए, अपितु भाषा में भी स्वराङ्कन करने में प्रवीण हुए। उनके द्वारा भिन्न-भिन्न विद्वानों एवं स्वशिष्यों को समय-समय पर लिखे गये ‘श्लोकबद्ध-सस्वरपत्र’ इसके निदर्शन हैं। निरुक्तशास्त्र के चूडान्त अध्येता आचार्य श्री सत्यानन्द जी वेदवागीश के जिह्वाग्र पर ‘निघण्टु’ और ‘निरुक्त’ के अनेक प्रसङ्ग नरीनर्तन सा करते हुए दृष्ट होते थे। “यमेव विद्या शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्” प्रसङ्ग को तो वे प्रायः नित्य ही सुना दिया करते थे।

६. भारतीय षड्दर्शनमर्मज्ञ- भारतीय ‘षड्दर्शन’ उनका अत्यन्त प्रिय विषय था। उनको कई दर्शन आर्षव्याख्या सहित स्मरण थे। योगदर्शन और न्यायदर्शन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। सम्पूर्ण ‘न्यायकुसुमाञ्जलि’ उन्हें कण्ठाग्र थी। योगदर्शन के क्रियात्मक पक्ष का भी उनका विशिष्ट अनुभव था। वे भले ही कितने ही व्यस्त क्यों न रहे हों, परन्तु सायङ्कालिकी-सन्ध्योपासना एक घण्टे से कम समय में कभी नहीं की। यदि उनको ‘आर्थिक चिन्तन’ और तत्पूर्यर्थ यत्र-तत्र पौराहित्य कर्म हेतु जाने से फुर्सत मिली होती, तो वे अवश्य ही, ‘भारतीय दर्शन शास्त्र’ पर कम से कम एक ग्रन्थ अवश्य लिखते।

७. आर्यसमाज के प्रख्यात महोपदेशक शास्त्रार्थ-केशरी- आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश जब से आर्यसमाज से जुड़े तब से लेकर अपने अवसानपर्यन्त एक सजग प्रहरी की तरह इसके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में सदैव संलग्न रहे। उन्हें आर्य सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई भी बात कभी भी स्वीकार्य नहीं थी, भले ही कोई क्यों न करे। उसका वे अपने ढंग से प्रतिकार अवश्य करते थे। वैदिक ‘त्रिक-सिद्धान्त’ के प्रबल सम्पोषक आचार्य श्री को नव्यवेदान्तियों का ‘अद्वैत-मत’ कतई स्वीकार नहीं था। इसी कारण उन्होंने ‘भानुपुरा-पीठ’ के तदानीन्तन मान्य शङ्कराचार्य को शास्त्रार्थ करने हेतु ललकारा था, परन्तु वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। अन्यत्र भी उनके (श्री आचार्य जी के) जीवन में ऐसे कई प्रसङ्ग आये जब उन्होंने वैदिक

विजय-वैजयन्ती को सगर्व समुत्तोलित किया।

वे एक कुशल प्रवक्ता, धुरीण विद्वान्, आदर्श कर्मयोगी, आशुकविः और सुचिन्तक दार्शनिक थे, यह सुस्पष्ट है। उनके समय के अनेक उत्कृष्टकोटिक विद्वानों में से कोई भी ऐसा विद्वान् क्यों नहीं हुआ जो कि उनके हाथ को ‘प्रसह्य संग्रह्य’ उन्हें सर्वविधचिन्ताओं से विनिर्मुक्त कर एक स्थान बैठा पाता? अस्तु, इस अद्भुत ऊहा के धनी विलक्षण विद्वान् का इस तरह पञ्चत्व में विलीन होना असह्य कष्टकारक है। मैं अत्यन्त विषण्ण और क्लेश-किलष्ट मन से सन्तप्त होकर उन्हें अपने अश्रुसिक्त श्रद्धासुमन समर्पित करता हूँ और उस लीलाधर की लीला को नमन करते हुए अपने वरेण्य आचार्य की आत्मा की शान्ति और सद्गति हेतु प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। वह सच्चिदानन्द प्रभु उनके शोकसन्तप्त परिवार को अथाह धैर्य और शोक सहन-शक्ति प्रदान करे।

श्रद्धाञ्जली

सुनील आर्य वेदश्रवा

चतुर्वेदी ह्यनूचानो यो व्याकरणशास्त्रार्कः।

व्रतानन्दस्य शिष्येषु मुख्यो शिष्यो दिवंगतः॥१॥

हानिर्ह्यार्यसमाजस्य वैदिकानां पुरुक्षतिः।

सुस्मरद्भिः धुरंधरैः श्रद्धाञ्जली समर्प्यते॥२॥

दयानन्दस्य रीतिनां ज्ञानी भक्तस्संचालकः।

सुस्मरिष्यन्ति विद्वान्सो यावत् चन्द्रदिवाकरौ॥३॥

ब्रह्मचारी सदाचारी प्रथमो वेदपाठने।

कण्ठे यस्य यजुर्वेदः सत्यानन्दो महाशयः॥४॥

स्नातको वेदवागीशः चतुर्वेदान् शनैश्शनैः।

अधीत्याश्रावयत् सर्वान् सत्यानन्दो महाशयः॥५॥

सत्यानन्दस्य यानेन वैदिकानां ह्यतिक्षतिः।

तत् स्थानस्य पूर्णता न कदापि भविष्यति॥६॥

दयानन्दस्य शैल्या हि वेदार्थे ह्यनुवर्तिने।

सत्यानन्दवरेण्याय श्रद्धाञ्जली सुमाञ्जली॥७॥

ब्यावर, अजमेर

इतिहास की लेखनी से

मैक्समूलर के विचारपरिवर्तन में महर्षि दयानन्द का प्रभाव

मैक्समूलर के कुछ पत्र अपनी पत्नी, पुत्र आदि के नाम लिखे हुए उपलब्ध हुए हैं। पत्र-लेखक पत्रों में अपने हृदय के भाव बिना किसी लाग-लपेट के लिखता है। अतः किसी भी व्यक्ति के लिखे हुए ग्रन्थों की अपेक्षा उसके पत्रों में लिखे विचार अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं।

प्रारम्भिक विचार- मैक्समूलर के आरम्भिक काल में वेदों के सम्बन्ध में क्या विचार थे, इसके निदर्शनार्थ उसके कुछ उद्धरण नीचे देते हैं-

१. सन् १८६६ के एक पत्र में मैक्समूलर अपनी पत्नी को लिखता है-

“वेद का अनुवाद और मेरा यह संस्करण उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर दूर तक प्रभाव डालेगा। यह उसके धर्म का मूल है और मैं निश्चय से अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना कि यह मूल कैसा है, गत तीन सहस्र वर्ष में उससे उपजने वाली सब बातों के उखाड़ने का एक मात्र उपाय है।”

२. एक पत्र में वह अपने पुत्र को लिखता है-

“संसार की सब धर्मपुस्तकों में से ‘नई प्रतिज्ञा’ (ईसा की बाइबिल) उत्कृष्ट है। इसके पश्चात् कुरान जो आचार की शिक्षा में ‘नई प्रतिज्ञा’ का रूपान्तर है, रखा जा सकता है। इसके पश्चात् पुरातन प्रतिज्ञा (यहूदी बाइबिल) दाक्षिणात्य बौद्धत्रिपिटक, ...वेद और अवेस्ता आदि हैं।”

३. १६ दिसम्बर सन् १८६८ में भारत सचिव ड्यूक ऑफ आर्गाइल को एक पत्र में मैक्समूलर लिखता है-

“भारत का प्राचीन धर्म नष्टप्राय है और यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता तो यह किसका दोष होगा?”

४. मैक्समूलर लिखता है- वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या परम बालिश, जटिल, अधम और साधारण है।

५. मैक्समूलर के नाम उसके घनिष्ठ मित्र ई. बी. पुसे का पत्र-

स्व. पं. युधिष्ठिर मीमांसक

“आपका कार्य भारतीयों को ईसाई बनाने के यत्न में नवयुग लानेवाला होगा।”

वाह क्या कहना? जैसा मैक्समूलर वैसा ही उसका मित्र? ऐसों के लिये ही तो कहावत है-

उद्याणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।

वस्तुतः इस काल के जो भी ईसाई, यहूदी, वेद और संस्कृत भाषा पर काम कर रहे थे उन सबके मस्तिष्क में ईसाई, यहूदी मत का पक्षपात कार्य कर रहा था। मोनियर विलियम्स ने संस्कृत-अंग्रेजी कोश की रचना की, इसके पीछे भी ईसाइयत की भावना काम कर रही थी। उसने उक्त कोष भारतीयों को ईसाई बनाने में, अपने देशवासियों को सहायता पहुँचाने के लिये लिखा था। वह कोश की भूमिका में लिखता है-

“That the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the scriptures into Sankrit, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion.” (भूमिका पृष्ठ ९)

हमारा प्रयोजन मैक्समूलर के प्रारम्भिक विचारों को प्रस्तुत करना था, वह उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया। अब हम उसके उत्तरकालीन विचारों को प्रस्तुत करते हैं-

उत्तरकालीन विचार- मैक्समूलर के उत्तरकालीन विचारों का संकलन हम उसके उन व्याख्यानों से उद्धृत करते हैं, जिन्हें उसने भारत में प्रशासकीय सेवा में आने वाले उम्मीदवारों के सम्मुख सन् १८८२ में ‘INDIA WHAT CAN IT TEACH US’ (हम भारत से क्या सीखें?) शीर्षक व्याख्यानमाला में प्रस्तुत किया था।

सबसे पहले तो हमारा ध्यान उक्त व्याख्यानमाला का शीर्षक ही आकृष्ट करता है। यह शीर्षक ही मैक्समूलर के विचारों में आये परिवर्तन की घोषणा करता है। अन्यथा भारतीयों को असभ्य जाहिल माननेवाले व्यक्ति को तो

भारत में प्रशासन चलाने आनेवाले व्यक्तियों को बताना चाहिये था कि तुम्हें वहाँ जाकर असभ्य भारतीयों को कैसे सभ्य बनाना है, न कि उन्हें यह बताया जाये कि 'हम भारत से क्या सीखें?'। अब हम इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद से कतिपय विचार उद्धृत करते हैं-

वैदिक धर्म ने कोई भी बाह्य प्रभाव ग्रहण नहीं किया- "वैदिक साहित्य को ऐतिहासिक महत्त्व देने में जब कोई आपत्ति नहीं मिल सकी तो भी अकारण आलोचकों ने एक महती और अन्तिम आपत्ति उठायी। ऐसे लोगों ने बल देकर कहना प्रारम्भ किया कि वैदिक काव्य यदि सम्पूर्णरूपेण विदेशी नहीं तो उस पर विदेशी प्रभाव और विशेषकर सेमेटिक प्रभाव तो अवश्य ही है। संस्कृत विद्वानों ने वेद के अनेक आकर्षक तत्त्वों का वर्णन किया है। उन्हीं के अनुसार वेद का सर्वाधिक आकर्षक तत्त्व यह है कि यह केवल धार्मिक विचारों की अति प्राचीन स्थिति से ही हमें परिचित नहीं कराता वरन् वैदिक धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है जिसने अपने सम्पूर्ण विकासकाल में कोई भी बाह्य प्रभाव नहीं ग्रहण किया तथा संसार के सभी धर्मों की तुलना में वह सर्वाधिक शताब्दियों तक निर्बाध रूप से चलता रहा है।"

वैदिक भाषा, साहित्य, धर्म या यज्ञ पर कोई भी बाह्य प्रभाव नहीं है- "प्राचीन भारतीय साहित्य पर विदेशी प्रभाव सिद्ध करने के लिये जितने तर्क दिये जा चुके हैं उन सबको कसौटी पर कस लेने के पश्चात् अब हम इस स्थिति में आ गये हैं कि हम कह सकते हैं कि किसी भी प्रकार का बाह्य प्रभाव वैदिक भाषा, साहित्य, धर्म या यज्ञ पर नहीं है। वह जिस किसी भी रूप में हमारे सामने है उसका उसी रूप और उसी देश में विकास हुआ है जो उत्तर में अगम्य पर्वतश्रेणियों से, पश्चिम में सिन्ध तथा रेगिस्तान से, दक्षिण में अगाध सागर से एवं पूर्व में गंगा से पूर्णरूपेण रक्षित था। हमारे सामने एक ऐसा काव्य (वैदिक धर्म) है जो वहीं जन्मा और वहीं विकसित हुआ।" (पृष्ठ १४५)।

बहुदेवतावाद वा एकदेवतावाद- "यदि आप हमसे यह पूछ बैठें कि वैदिक धर्म एकदेववादी है या बहुदेववादी। तो इसका उत्तर दे सकना मेरे लिए कम कठिन नहीं होगा।

एकदेववाद का जो अर्थ लगाया जाता है, उस अर्थ में तो वैदिक धर्म एकदेववादी नहीं है। यद्यपि अनेक ऋचाएँ ऐसी हैं जिनमें एकदेववाद की बात जितना बल देकर कही गयी है उतना बल देकर तो ओल्ड टेस्टामेण्ट में भी नहीं कही गयी है। न्यू टेस्टामेण्ट एवं कुरान की भी यही स्थिति है। एक वैदिक ऋषि का कथन है कि वह एक है, सन्त जन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं जैसे अग्नि, यम, मातरिश्वन्।" (पृष्ठ १४८)।

"यदि एकदेववाद या बहुदेववाद में निर्णय करना हो तो प्रथम दृष्टि में तो यही प्रतीत होगा कि वैदिक धर्म बहुदेववादी है, परन्तु बहुदेववाद से हम जो अर्थ लगाते हैं, उस अर्थ में यह शब्द वैदिक धर्म का विशेषण नहीं बन सकता। वास्तव में बहुदेववाद की विचारधारा को हमने ग्रहण किया है रोम और यूनान से। हम समझते हैं कि बहुदेव में देवताओं का एक संगठित रूप होता है, जिनमें प्रत्येक की शक्तिमात्रा दूसरे से भिन्न होती है और वे सब-के-सब उस परमेश्वर के सहायक हैं, जिसे वे जीसस या जुपिटर कहते हैं। वेदों का बहुदेववाद इससे भिन्न है। वह न केवल यूनानियों या रोमवालों से भिन्न है वरन् वह पॉलिनेशियन, अमेरिकन तथा अफ्रीकन भावनाओं से भी भिन्न है और यह भिन्नता उसी प्रकार की है जैसे स्वशासनाधिकार प्राप्त ग्रामों का संघ राजतन्त्रीय शासन से भिन्न होता है।" (पृष्ठ १४९)।

केवल एक ही देव- "...ऋषियों ने स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि यद्यपि ये नाम केवल नाममात्र हैं और जिसके ये नाम हैं वह एक है और केवल एक है।" (पृष्ठ १५१)।

"उसी विद्वान् लेखक (यास्क) का कथन है कि देव तो वास्तव में एक ही है...ये ढेर सारे देवता उसी आत्मन् के विभिन्न सदस्य हैं।" (पृष्ठ २२३)।

वेद का चरम लक्ष्य- "मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि भारत का दर्शनशास्त्र ही वहाँ का सर्वोच्च धर्म है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत प्राचीनतम दर्शनशास्त्र का प्राचीनतम नाम है-वेदान्त अर्थात् वेद का अन्त, वेद का लक्ष्य या वेद का सर्वोच्च उद्देश्य।" (पृष्ठ २२३)

“लोगों ने वेद की महत्ता को कम करने के कम प्रयत्न नहीं किए हैं, पर उसका महत्त्व आज भी वैसा ही है।” (पृष्ठ २२७)

“वेदान्तदर्शन के अनेक प्रमुख अङ्ग गँवई गाँव के निरक्षर व्यक्ति भी पूरी तरह समझते हैं।” (पृष्ठ २२७)

मैक्समूलर ने अपने व्याख्यानों की समाप्ति ‘शापनहावर’ के उपनिषद् विषयक उद्गारों को उद्धृत कर इस प्रकार किया-

“यदि आप यह समझते हों कि मेरे द्वारा प्रस्तुत विवरण अतिरञ्जित हैं तो मैं आपके समक्ष एक महान् दार्शनिक-आलोचक के कुछ शब्द रखूँगा। उस विद्वान् की यही विशेषता थी कि दूसरों के विचारों की व्यर्थ प्रशंसा करना उसके स्वभाव के विपरीत था। इस प्रसिद्ध विद्वान् शापनहावर ने उपनिषदों पर अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि-

समूचे संसार में कोई भी अध्ययन इतना लाभजनक और ऊँचा उठाने वाला नहीं है जैसा कि उपनिषदों का अध्ययन। यह मेरे जीवन का सन्तोष रहा है और यही मेरी मृत्यु का भी सन्तोष रहेगा।” (पृष्ठ २३०)

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि इन व्याख्यानों के समय (सन् १८८२) तक भारत, भारतीय धर्म और वेद के विषय में मैक्समूलर के विचारों में बहुत अन्तर हो गया था, परन्तु यह अन्तर किन कारणों से हुआ, क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य इसमें कारण था वा नहीं, इसका स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य सम्बन्धी कार्य से मैक्समूलर भली प्रकार परिचित था और स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपने वेदभाष्य सम्बन्धी कार्य के विषय में मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स की प्रतिक्रिया जानने को सदा उद्यत रहते थे, यह हम पूर्व लिख चुके हैं और इनके मध्य श्यामजीकृष्ण वर्मा जो संस्कृत अध्यापन के लिये लन्दन गये हुए थे, सम्पर्कमाध्यम के रूप में भूमिका निबाह रहे थे। इन सब घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि मैक्समूलर के विचारों में परिवर्तन का प्रमुख कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य अवश्य रहा होगा। इसकी पुष्टि मैक्समूलर के निम्न कथन से भी होती है-

“ऋग्वेदकाल से आरम्भ करके दयानन्द द्वारा सम्पादित ऋग्वेदभाष्य की भूमिका लिखे जाने के समय तक के साहित्य को दो भागों में बाँट सकते हैं। यहाँ यह भी बताना समुचित ही होगा कि दयानन्द द्वारा लिखी गई ऋग्वेद की भूमिका भी कम रुचिपूर्ण नहीं है।”

(हम भारत से क्या सीखें-पृष्ठ १०२)

सबसे अधिक खेद का विषय यह है कि भारत के विश्वविद्यालयों में मैक्समूलर के वे ही विचार पढ़ाये जाते हैं, जो उसने प्रारम्भिक काल में ईसाई मत के जोश में लिखे थे। मेरा सुझाव है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में जिसमें भी संस्कृत भाषा से सम्बद्ध विषय पढ़ाये जाते हैं, वहाँ कम से कम मैक्समूलर के ‘INDIA WHAT CAN IT TEACH US’ (हम भारत से क्या सीखें?) शीर्षक व्याख्यान-संकलन पाठ्यपुस्तकों में अवश्य रखा जाय तभी मैक्समूलर-भक्त अपनी अन्धभक्ति को त्यागकर कुछ प्रकाश पा सकेंगे।

गीत

जगत में जो उत्तम तिरा काम होगा।
तो फिर तो स्वयं ही तिरा नाम होगा।।

तिरे काम उत्तम से उत्तम हों बन्दे।
कभी भूल कर भी न कर काम मन्दे।।
करेगा तू जो काम निष्काम होगा।
तो फिर तो स्वयं ही तिरा नाम होगा।

सदा दीन दुखियों की सेवा किया कर।
जो आशीष दें शीश पर ले लिया कर।।
किसी दीन का घर तिरा धाम होगा।
तो फिर तो स्वयं ही तिरा नाम होगा।

अगर कोई होगा बड़ा लक्ष्य तेरा।
बड़प्पन तिरा घर में डालेगा डेरा।।
तू फिर कृष्ण होगा, तू फिर राम होगा।
तो फिर तो स्वयं ही तिरा नाम होगा।

-विजय अरुण, मुम्बई

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रवेश सूचना- महात्मा सत्यानन्द मुंजाल आर्य कन्या गुरुकुल, शास्त्री नगर, लुधियाना में छठी कक्षा में आयु ९ से ११ वर्ष कन्याओं के प्रवेश हेतु नियमावली एवं पंजीकरण पत्र (मूल्य १०० रु.) भरकर ३१.०३.२०२० तक गुरुकुल के कार्यालय में जमा करवाएँ। पंजीकरण पत्र डाक द्वारा भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

कन्याओं की लिखित प्रवेश-परीक्षा ०५ अप्रैल २०२० रविवार को प्रातः ८ बजे होगी। सफल कन्याओं का साक्षात्कार एवं स्वास्थ्य परीक्षण भी उसी दिन होगा।

सम्पर्क- ९८१४६२९४१०

२. सम्मानित- आर्यजगत् के विद्वान् और वैदिक उपदेशक विद्यालय, लखनऊ के संचालक डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक' को आर्य प्रतिनिधि सभा, मुम्बई द्वारा दि. २३ दिस. २०१९ को 'आर्य वैदिक विद्वान् सम्मान' प्रदान किया गया।

३. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- आर्यसमाज औरंगनगर, राड़धना, मेरठ, उ.प्र. में दो दिवसीय १९ व २० अक्टूबर २०१९ को वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर स्वामी सच्चिदानन्द-जयपुर के प्रवचन एवं श्रीमती कल्याणी भजनोपदेशिका-हिसार एवं श्री मोहित शास्त्री-बिजनौर के भजन हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

४. आर्यसमाज औरंगनगर, राड़धना, मेरठ, उ.प्र. के चुनाव में प्रधान- श्री राजासिंह, **मन्त्री-** श्री रवीन्द्रपाल, **कोषाध्यक्ष-** श्री धीरज को चुना गया।

शोक-संवेदना

५. श्री राव हरिश्चन्द्र का निधन- आर्यसमाज के प्रसिद्ध दानवीर, महर्षि दयानन्द सरस्वती, वैदिक धर्म, आर्यसमाज तथा गुरुकुलों के प्रति मन-वचन-कर्म से विशेष आस्था रखने वाले, बीगोपुर (नारनौल, हरियाणा) के मूल निवासी **श्री राव हरिश्चन्द्र** का निधन २४-१२-२०१९ को हो गया। उनकी अन्त्येष्टि २५-१२-२०१९ को उनके जन्मस्थान में की गई, उस समय सैकड़ों आर्यवीर और

श्रद्धालु जन उपस्थित थे।

२७-१२-२०१९ को ग्राम बीगोपुर में उनकी स्मृति में श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन किया गया।

६. पण्डित रतिराम शर्मा का निधन- वैदिक धर्म के अनन्य उपासक, आर्यसमाज के दिवाने और ऋषि दयानन्द के परमभक्त कर्मयोगी, आर्यरत्न **पण्डित रतिराम शर्मा** सोमवार ३० दिसम्बर २०१९ को इस नश्वर संसार को सर्वदा के लिए त्यागकर परलोकवासी हो गये।

श्री रतिराम शर्मा ने ९२ वर्ष की आयु को प्राप्त किया। अपने क्षेत्र सिलीगुड़ी नगर ही नहीं अपितु पूरे उत्तर बंगाल और नेपाल में आर्यसमाज और समाज-सेवा के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है। आप सिलीगुड़ी में आर्यसमाज, ऋषि भवन, डी.ए.वी. स्कूल और वैदिक विद्या प्रतिष्ठान सहित अनेक संस्थाओं के निर्माण के मुख्य शिल्पकार रहे।

परोपकारिणी सभा दिवंगतात्माओं को विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

पाठकों की प्रतिक्रिया

आर्यसमाज के दिग्गज विद्वान् वेदों के पण्डित एवं परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्य पण्डित सत्यानन्द वेदवागीश जी का निधन विगत २३.१२.२०१९ को हो गया। हमें गहरा आघात लगा। वेदों एवं आर्ष ग्रन्थों के ऐसे मर्मज्ञ विद्वान् जिनको वेद मन्त्रों के पृष्ठ संख्या भी मौखिक रूप से कण्ठस्थ थे। सरल एवं मधुर वाणी में उनके प्रवचन सुनने का कई बार परोपकारिणी सभा एवं स्मृति भवन न्यास जोधपुर में अवसर प्राप्त हुआ, ऐसे विद्वानों के वियोग से मानसिक पीड़ा होना स्वभाविक है लेकिन ईश्वर के विधान के आगे हम सबको नतमस्तक होना ही पड़ता है।

हम आर्यसमाज के समस्त सदस्य पदाधिकारी उन्हें भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें चिरशान्ति एवं मोक्ष प्रदान कर उनके आश्रितों को इस गहन दुःख को सहन करने की शक्ति भी दें।

- सुखलाल आर्य, प्रधान आर्यसमाज टोंक

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगांठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगांठ आदि व दूरभाष संख्या सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा दें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि “कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।” यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का निःशुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-10158172715

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530

IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० दिसम्बर २०१९ तक)

१. श्री शान्तिस्वरूप गोयल, लुधियाना २. श्री जितेन्द्रसिंह वेदी, अजमेर ३. श्री नरेन्द्र आर्य, जोधपुर ४. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ४. श्री स्वामी योगानन्द, हरिद्वार ५. श्री कौशल गुप्ता, गाजियाबाद।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३० दिसम्बर २०१९ तक)

१. श्री हरसहायसिंह आर्य, बरेली २. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ३. श्री दयालदास आहुजा, अजमेर ४. श्री पूजा यादव, मैसूर ५. डॉ. संजना शर्मा, अजमेर ६. श्री प्रथम गहलोत, अजमेर ७. श्री उदयवीरसिंह नेहरा, दिल्ली ८. श्रीमती संगीता, दिल्ली ९. कुमारी मेघा, दिल्ली १०. श्री देव नेहरा, दिल्ली ११. श्रीमती नीलू, दिल्ली १२. श्री रोहित दिल्ली १३. श्री प्रकाशवीर नेहरा, दिल्ली १४. श्री सुरेन्द्र, दिल्ली १५. श्री सर्वमित्र दिल्ली १६. श्री मोहित शास्त्री, दिल्ली १७. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट १८. श्री अनुराग जयसवाल जौनपुर।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छोड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है, जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ मूल्य : १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० मूल्य : ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ मूल्य : २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ मूल्य : १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ मूल्य : १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -संपादक